चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'

आधुनिक हिंदी गद्य को वैविध्यपूर्ण एवं गौरवमय बनाने में जिन लेखकों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है, उनमें चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गुलेरी जी का जन्म सन् 1884 में एक समृद्ध तथा विद्या–संपन्न परिवार में हुआ। गुलेरी के पूर्वज कांगड़ा के गुलेर गाँव के निवासी थे। उनके पिता पं. शिवराम शास्त्री जयपुर संस्कृत कॉलेज के प्रधानाचार्य थे।

गुलेरी जी में मेधा और प्रतिभा का अभूतपूर्व सामंजस्य था। अपने छात्र जीवन में प्रत्येक परीक्षा उन्होंने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। पुरातत्व, इतिहास, भाषा–विज्ञान, दर्शन साहित्य आदि विषयों में उनकी गहरी पैठ थी। इसका प्रमाण 1904 से 1907 के बीच लिखे गये उनके निबंधों से हमें मिलता है। गुलेरी जी के निधन के लगभग पच्चीस वर्ष बाद उनकी कालजयी कृति 'पुरानी हिंदी' का प्रकाशन हुआ, जिसने विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा की उत्पति और विकास का ज्ञान छात्रों को करवाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। वे हिंदी, संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, बंगला, मराठी आदि भारतीय भाषाओं के ज्ञाता थे तथा उनका अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन तथा लैटिन भाषाओं पर अच्छा अधिकार था। गुलेरी जी एक सफल गद्यकार होने के साथ–साथ ब्रज तथा खड़ी बोली के सफल कवि भी थे। मुक्तछंद में हिंदी कविता लिखने वाले वे पहले कवि हुए। हिंदी में 'इंटरव्यू–साहित्य' का सूत्रपात करने का श्रेय भी गुलेरी जी को ही दिया जाता है। बीस–इक्कीस वर्ष की अल्पायु में ही गुलेरी जी ने 'जयपुर समालोचना' नामक पत्रिका का संपादन कर हिंदी समीक्षा को आगे बढ़ाया।

गुलेरी जी ने अपने जीवनकाल में केवल तीन ही कहानियाँ लिखीं– 'सुखमय जीवन' कहानी सन् 1911 में 'भारत मित्र' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। 'बुद्धू का काँटा' व्यंग्य से परिपूर्ण कहानी है। 'उसने कहा था' कहानी सन् 1915 में 'सरस्वती' पत्रिका में छपी थी, जो हिंदी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में आती है। हिंदी का पाठक समुदाय तो उन्हें 'उसने कहा था' कहानी के नाम से ही जानता है।

'उसने कहा था' शीर्षक कहानी गुलेरी जी की सर्वश्रेष्ठ कहानी है तथा उनकी अचल कीर्ति का आधार स्तम्भ है। हिंदी कहानी के विकास में इस कहानी का अपना विशेष महत्व है। यह कहानी लहनासिंह के चरित्र के माध्यम से निश्छल

Scanned by CamScanner

प्रेम, प्रण–पालन, त्याग की भावना, तथा वीरता जैसे भावों को एक साथ अभिव्यक्ति देती है। लहनासिंह अपने बचपन के प्रेम के लिए अभूतपूर्व त्याग करता है और अपने प्राणों की आहुति देकर सूबेदारनी के पति और पुत्र की रक्षा करता है। प्रतिपाद्य तथा रचनाशिल्प की दृष्टि से यह एक अनूठी रचना है। कहानी का प्रारम्भ अत्यंत आकर्षक ढंग से करते हुए लेखक ने अंत में करुणा की अभूतपूर्व सृष्टि की है। कथा–सूत्रों को परस्पर जोडने तथा पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को उद्घाटित करनेवाले समर्थ संवाद, अमृतसर से लेकर फ्रांस की युद्धभूमि के वातावरण का सजीव चित्रण, भावानुकूल एवं पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग इस कहानी को एक ऊँचाई प्रदान करते हैं। पूर्वदीप्ति शैली का सफल प्रयोग हिंदी में पहली बार इसी कहानी में हुआ है। व्यंग्य का पुट, सूक्ष्म चरित्र–चित्रण, देशज, उर्दू तथा पंजाबी शब्दों के प्रयोग के द्वारा वातावरण की सृष्टि; सरल, सहज और मुहावरेदार भाषा इस कहानी की विशेषताएँ हैं।

1

उसने कहा था

– चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'

बड़े–बड़े शहरों के इक्के–गाड़ीवालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गये हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्टवालों की बोली का मरहम लगावें। जब बडे–बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थापित करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न रहने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की उँगलियों के पोरों को चीथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने, नाक की सीध चले जाते हैं, अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले तंग चक्करदार गलियों में हर एक लढ्ढीवाले के लिए ठहर कर सब्र का समुद्र उमड़ाकर 'बचो खालसा जी', 'हटो भाई जी', 'ठहरना भाई', 'आने दो लाला जी', 'हटो बाछा' कहते हुए साफेद फेंटों, खच्चरों और बतकों, गन्ने, खोमचे और भारेवालों के जंगल में राह लेते हैं, क्या मजाल है कि जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार–बार चेतावनी देने पर भी लीक से नहीं हटती तो उनकी बचनावली के ये नमूने हैं–हट जा जीणे जोगिये, हट जा करमाँ वालिए, हट जा पुता प्यारियें, बच जा लम्बी उमराँ वालिए। समष्टि में इसका अर्थ हैं कि तू जीने योग्य है, तू भाग्योंवाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहियों के नीचे आना चाहती है ? बच जा।

ऐसे बंबूकार्टवालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौंक की एक दुकान पर आ मिले। उसके बालों और उसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिक्ख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दुकानदार एक परदेशी से गुँथ रहा था, जो सेर भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

"तेरे घर कहाँ है ?"

"मगरे में – और तेरे ?"

Scanned by CamScanner

"माँझे में – यहाँ कहाँ रहती हैं ?"

"अतरसिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।"

"मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरु बाजार में है।"

इतने में दुकानदार निवटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ–साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्कराकर पूछा, "तेरी कुड़माई हो गई?"

इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे–तीसरे दिन सब्जीवाले के यहाँ, दूधवाले के यहाँ, अकस्मात दोनों मिल जाते हैं। महीना भर यही हाल रहा। दो–तीन बार लड़के ने फिर पूछा, "तेरी कुड़माई हो गई ?" और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा, तो लड़की, लड़के की सम्भावना के विरुद्ध बोली, "हाँ, हो गई।"

"कब ?"

"कल, देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।"

लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में धकेल दिया, एक छाबड़ीवाले की दिन–भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभीवाले के ठेले में दूध उँड़ेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अन्धे की उपाधि पाई, तब कहीं घर पहुँचा।

(2)

"राम–राम, यह भी कोई लड़ाई है। दिन–रात खन्दकों में बैठे–बैठे हड्डियाँ अकड़ गईं। लुधियाना से दस गुना जाड़ा और मेंह और बरफ ऊपर से पिंडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं। गनीम कहीं दिखता नहीं, घण्टे दो घण्टे में कान के परदे फाड़नेवाले धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ–सौ गज धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का जलजला सुना था, यहाँ दिन में पच्चीस जलजले होते हैं। जो कहीं खन्दक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई, तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लिपटे हुए हैं या पास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।"

"लहनासिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खन्दक में बिता ही दिये। परसों 'रिलीफ' आ जायेगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे। उस फिरंगी मेम के बाग में। मखमल की–सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, पर दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो।"

"चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूँ तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना

नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े–संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं, और पैर पकड़ने लगते हैं। या अँधेरे में तीस–तीस मन के गोले फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था– चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल साहब ने हट जाने का कमान दिया, नहीं तो....."

"नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते। क्यों ?" सूबेदार हजारासिंह ने मुस्कराकर कहा, "लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाए नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गये तो क्या होगा ?"

"सूबेदारजी, सच है," लहनासिंह बोला, "पर करें क्या ? हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं, और खाई में दोनों तरफ से चंबे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय तो गरमी आ जाये।"

"उदमी उठ, सिगड़ी में कोयले डाल। वजीरा, तुम चार जने बाल्टियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। लहनासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाजे का पहरा बदला दे।" यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगा।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला पानी भर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला, "मैं पाँधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण।" इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गए।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा, 'अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा।"

"हाँ, देश क्या है स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमाव जमीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा।"

"लाड़ी होराँ को भी यहाँ बुला लोगे ? या वही दूध पिलाने वाली फिरंगी मेम....."

"चुप कर। यहाँ वालों को शरम नहीं।"

"देश–देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिक्ख तम्बाकू नहीं पीते। वह सिगरेट पीने में हठ करती है, होंठों में लगाना चाहती है। और मैं पीछे हटता हूँ, तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिए लड़ेगा नहीं।"

"अच्छा, अब बोघासिंह कैसा है ?"

"अच्छा है।"

"जैसे मैं जानता ही न होऊँ। रात–भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और निमोनिया से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।"

Scanned by CamScanner

"मेरा डर मत करो। मैं तो वुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।"

वजीरासिंह ने त्योरी चढ़ाकर कहा, "क्या मरने मारने की बात लगाई है? मरें जर्मन और तुरक। हाँ भाइयों, कुछ गाओ !"

कौन जानता था कि दाढ़ियोंवाले, घरवारी सिक्ख अश्लील गीत गाएँगे, पर सारी खन्दक गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गए मानो चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हो।

(3)

दोपहर रात बीत गई है। अँधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली बिस्कुटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कम्वल बिछाकर और लहनासिंह के दो कम्वल और एक बरानकोट ओढ़कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहा।

"क्यों बोधा भाई, क्या है ?"

"पानी पिला दो।"

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पूछा, "कहो कैसे हो ?"

पानी पीकर बोधा बोला, "कँपकँपी छूट रही है। रोम–रोम से तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।"

"अच्छा, मेरी जरसी पहन लो।"

"और तुम ?"

"मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गरमी लगती है, पसीना आ रहा है।"

"ना, मैं नहीं पहनता, चार दिन से तुम मेरे लिए....."

"हाँ, याद आई। मेरे पास दूसरी जरसी है। आज सबेरे ही आई है। विलायत से मेमें वुन–वुनकर भेज रही हैं। गुरु उनका भला करें।" यों कहकर लहना अपना कोट उतारकर जरसी उतारने लगा।

"सच कहते हो ?"

"और नहीं झूठ ?" यों कहकर नाहीं करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घण्टा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज आई, "सुबेदार हजारा सिंह !"

"कौन, लपटन साहब ? हुकुम हुजूर!" कहकर सूबेदार तनकर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

"देखो, इसी समय धावा करना होगा। मील–भर की दूरी पर पूरव के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से ज्यादा जर्मन नहीं है। इन पेड़ों के नीचे–नीचे दो खेत काटकर रास्ता है। तीन–चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ हैं, वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सबको साथ ले उनसे जा मिलो। खन्दक छीनकर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।"

"जो हुक्म।"

चुपचाप सब तैयार हो गए। बोधा भी कम्वल उतारकर चलने लगा, तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझकर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा–बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेरकर खड़े हो गए। और जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ उठाकर कहा, "लो, तुम भी पियो।"

आँख मारते–मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपाकर बोला, "लाओ साहब।" हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गए और उनकी जगह कैदियों के से कटे हुए बाल कहाँ से आ गए ?

शायद साहब शराब पिये हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है। लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजीमेंट में थे।

"क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जाएँगे।"

"लड़ाई खत्म होने पर। क्यों, क्या यह देश पसन्द नहीं ?"

"नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम–आप जगाधरी जिले में शिकार करने गये थे," .... "हाँ–हाँ" ....."वहीं जब आप खोते पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ाने को रह गया था।" – "बेशक पाजी कहीं का"

"सामने से वह नील गाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी। और आपकी एक गोली कन्धे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा आता है। क्यों साहब !" शिमले से तैयार होकर उस नील गाय का सिर आ गया था न ? आपने कहा था कि रेजीमेंट की मेस में लगाएँगे।" – "हाँ, पर मैंने वह विलायत भेज दिया।" – "ऐसे बड़े–बड़े सींग ! दो–दो फुट के तो होंगे ?"

"हाँ, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे, तुमने सिगरेट नहीं पिया ?"

Scanned by CamScanner

"पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ– कहकर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।"

अँधेरे में किसी सोनेवाले से वह टकराया।

"कौन ? वजीरासिंह ?"

"हाँ, क्यों लहना ? क्या कयामत आ गई ? जरा तो आँख लगने दी होती।"

(4)

"होश में आओ। कयामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आई है।"

"क्या ?"

"लपटन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गये हैं। उनकी वर्दी पहनकर कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा। मैंने देखा और बातें की है। सौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर कितावी उर्दू, और मुझे पीने को सिगरेट दिया है।"

"तो अब ?"

"अब मारे गए। धोखा है। सूबेदार कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा। उठो, एक काम करो। पलटन के पैरों के निशान देखते–देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गये होंगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आवें। खन्दक की बात झूठ है। चले जाओ। खन्दक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।"

"हुक्म तो यह है कि यहीं...."

"ऐसी–तैसी हुक्म की। मेरा हुक्म–जमादार लहनासिंह, जा इस वक्त यहाँ सबसे बड़ा अफसर हैं – उसका हुक्म है। मैं लपटन साहब की खबर लेता हूँ।"

"पर यहाँ तो तुम आठ ही हो।"

"आठ नहीं दस लाख। एक–एक अकालिया सिक्ख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।"

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह–जगह पर खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार–सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ एक दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने....

बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी बन्दूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तानकर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन पर मारा और

साहब आह ! 'माई गॉड' कहते हुए चित हो गए। लहनासिंह ने तीनों गोले बीनकर खन्दक के बाहर फेंके और साहब को घसीटकर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन–चार लिफाफे और एक डायरी निकालकर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्च्छा हटी। लहनासिंह हँसकर बोला, "क्यों लपटन साहब, मिजाज कैसा है ? आज मैंने बहुत बातें सीखीं – यह सीखा कि सिक्ख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नील गायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते है और साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहाँ से सीख आये ? हमारे लपटन साहब तो बिना 'डैम' के पाँच लफ्ज भी नहीं बोल सकते थे।"

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानों जाड़े से बचने के लिए दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनसिंह कहता गया, "चालाक तो बड़े हो पर माझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है, उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिए। तीन महीने हुए एक तुर्की मौलवी मेरे गाँव में आया था। औरतों को बच्चे होने के ताबीज बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी की बड़ के नीचे मंजा बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनी वाले बड़े पंडित हैं। वेद पढ़–पढ़कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गए हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जाएँगे तो गौ–हत्या बन्द कर देंगे। मण्डी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपये निकाल लो, सरकार का राज्य जाने वाला है। डाकबाबू पील्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्ला जी की दाढ़ी मूँड़ दी थी और गाँव से बाहर निकाल कर कहा था कि जो मेरे गाँव में अब पैर रखा तो....."

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना की हैंनरी मार्टिनी के दो फायरों ने साहब की कपाल–क्रिया कर दी। धड़का सुनकर सब दौड़ आये।

बोधा चिल्लाया, "क्या है ?"

लहनासिंह ने उसे तो यह कहकर सुला दिया कि "एक हड़का हुआ कुत्ता आया था। मार दिया।" – और, औरों से सब हाल कह दिया। सब बन्दूकें लेकर तैयार हो गए। लहना ने साफा फाड़कर घाव के दोनों तरफ पट्टियाँ कसकर बाँधी। घाव मांस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक–तक कर मार रहा था–वह खड़ा था, और–और लेटे हुए थे।) और वे थे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़कर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़े–से मिनटों में वे.....

Scanned by CamScanner

अचानक आवाज आयी, "वाह गुरुजी की फतह ! वाह गुरुजी का खालसा ! और धड़ाधड़ बन्दूकों की फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गए। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।"

एक किलकारी और, "अकाल सिक्खाँ दी फौज आई ! वाह गुरुजी की फतह ! वाह गुरुजी का खालसा !! सतश्री अकाल पुरुख !!!" और लड़ाई खत्म हो गई। तिरसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गये। सूबेदार के दाहिने कन्धे में से गोली आर–पार निकल गई। लहनासिंह की पसली में गोली लगी। उसने घाव को खन्दक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी को साफा कसकर कमरबन्द की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना को दूसरा घाव–भारी घाव लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था। ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है और हवा ऐसी चल रही थी जैसे कि बाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन–मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी, जब मैं दौड़ा–दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार, लहनासिंह से सारा हाल सुन, और कागजात पाकर, उसकी तुरंत बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज़ तीन मील दाहिनी ओर की खाईवालों ने सुन ली थी। उन्होंने टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो डाक्टर और बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं, जो कोई डेढ़ घंटे के अन्दर–अन्दर वहाँ आ पहुँची। फील्ड अस्पताल नजदीक था। सुबह होते–होते वहाँ पहुँच जायेंगे, इसलिए मामूली पट्टी बाँधकर एक गाड़ी में घायल लिटाये गये और दूसरी में लाशें रक्खी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही, पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है, सबेरे देखा जायगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देखकर लहना ने कहा, "तुम्हें बोधा की कसम है, और सूबेदारनी की सौगन्ध है, जो इस गाड़ी में न चले जाओ।"

"और तुम ?"

"मेरे लिए वहाँ पहुँचकर गाड़ी भेज देना, और जर्मन मुर्दों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ ?"

"वजीरासिंह मेरे पास ही है।"

"अच्छा, पर....."

"बोधा गाड़ी पर लेट गया ? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो,

सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था, वह मैंने कर दिया।"

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते–चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा, "तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं। लिखना कैसा। साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना, उसने क्या कहा था ?"

"अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना और कह भी देना।"

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया, "वजीरा, पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा हैं।"

(5)

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म–भर की घटनाएँ एक–एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं, समय की धुन्ध बिल्कुल उनपर से हट जाती है।

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दही वाले के यहाँ, सब्जीवाले के यहाँ, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता कि तेरी कुड़माई हो गई। तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा, हाँ, कल हो गई। देखते नहीं यह रेशमी बूटोंबाला सालू।' सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ ?

"वजीरासिंह, पानी पिला दे।"

पच्चीस वर्ष बीत गये। अब लहनासिंह नं. 77 राइफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकदमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजीमेंट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है। फौरन चले जाओ। साथ ही सूबेदार हजारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना ? साथ चलेंगे। सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे तब सूबेदार बेड़े में से निकलकर आया। बोला, "लहना! सूबेदारनी तुझको जानती हैं, बुलाती हैं। जा, मिल आ।" लहनासिंह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे जानती हैं ? कब से ? रेजीमेंट के क्वार्टरों में कभी सूबेदारनी के घर के लोग रहे नहीं। दरवाजे पर जाकर 'मत्था टेकना' कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

"मुझे पहचाना ?"

Scanned by CamScanner

"नहीं।"

"तेरी कुड़माई हो गई – धत् – कल हो गई – देखते नहीं, रेशमी बूटोंबाला सालू – अमृतसर में...."

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली, पसली का घाव बह निकला।

"वजीरा, पानी मिला....." 'उसने कहा था।.....'

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है– 'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गए। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है। लायलपुर में जमींन दी है, आज नमक हलाली का मौका आया है, पर सरकार ने हम तीमियों को घघरिया पलटन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती ? एक बेटा है। फौज में भरती हुए उसे एक बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।' सूबेदारानी रोने लगी। 'अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग। तुम्हें याद है एक दिन तांगेवाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़ों की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।'

रोती–रोती सूबेदारनी ओवरी में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया।

"वजीरासिंह पानी पिला–" 'उसने कहा था....'

लहना का सिर गोद में रक्खे वजीरासिंह बैठा है। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घंटे तक लहना चुप रहा, फिर बोला, "कौन ? कीरत सिंह ?"

वजीरा ने कुछ समझकर कहा, "हाँ।"

"भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।"

वजीरा ने वैसा ही किया।

"हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस, अबके हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चाचा–भतीजा दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना तो यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने मैंने इसे लगाया था।"

वजीरासिंह के आँसू टप–टप टपक रहे थे।

कुछ दिनों पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा–

फ्रांस और बेलजियम, 68वीं सूची–मैदान में घावों से मरा नं. 77 सिख राइफल्स, जमादार लहनासिंह।

Scanned by CamScanner

प्रेमचंद

हिंदी साहित्यकारों में सूर्य की तरह दैदीप्यमान प्रेमचंद जी का जन्म 31 जुलाई 1880 को उत्तर प्रदेश के बनारस के पास एक छोटे से गाँव लमही में एक निर्धन परिवार में हुआ था। प्रेमचंद सात साल के थे कि उनकी माता का देहांत हुआ और पन्द्रह वर्ष की आयु में पिता चल बसे। अल्पायु में ही उनके कंधे पर परिवार की जिम्मेदारी आयी। आर्थिक संकटों से जूझते हुए उन्होंने 1910 में इंटर पास किया और 1919 में बी. ए. किया। 1920 में गांधीवादी विचारधारा और आंदोलन के संपर्क में आने से उन्होंने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र देने का निश्चय किया और आजीवन आर्थिक कठिनाइयों से जूझते हुए साहित्य लेखन करते रहे।

प्रेमचंद का वास्तविक नाम 'धनपतराय' था। वे उर्दू में 'नवाबराय' नाम से लिखते थे। अंग्रेजों द्वारा उनकी 'सोजे वतन' यह रचना जब्त करने के पश्चात उन्होंने प्रेमचंद नाम धारण कर हिंदी में लिखना आरंभ किया। उनकी सर्वप्रथम कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' सन् 1907 में प्रकाशित हुई थी। प्रेमचंद ने लगभग तीन सौ से ऊपर कहानियाँ लिखी, जो 'मानसरोवर' के आठ खण्डों में संकलित हैं। इसके अलावा एक दर्जन से ऊपर उपन्यास लिखे। जमाना, मर्यादा, माधुरी, जागरण, हंस जैसी पत्रिकाओं का भी उन्होंने संपादन किया।

प्रेमचंद वे कथाकार हैं, जिन्होंने कहानी और उपन्यास को राजा–महाराजाओं के महल से निकालकर खेत–खलिहान और झोपड़ी के साथ जोड़ दिया। कल्पना और मनोरंजन की दुनिया में विहार करने वाले कथा साहित्य को उन्होंने मनुष्य जीवन के साथ जोड़ दिया। प्रेमचंद ने मानव–मन की गहराई में उतर कर उसके सुख–दुःख, हर्ष–विषाद, मानसिक द्वंद्व तथा विविध समस्याओं को कथा साहित्य में रूपायित कर प्रगतिवादी विचारों की स्थापना करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। आदर्श और यथार्थ का समन्वय, विविध प्रकार के पात्र, कथावस्तु की विविधता, प्रगतिवादी दृष्टिकोण, मानवतावाद की स्थापना, उपेक्षित पात्रों के प्रति सहानुभूति आदि उनके कथा साहित्य की विशेषताएँ हैं।

कहानियाँ – 'कफ़न', 'पूस की रात', 'बड़े घर की बेटी', 'ठाकुर का कुआँ', 'सद्गति', 'सुजान भगत', 'ईदगाह' आदि चर्चित कहानियाँ हैं।

उपन्यास – 'सेवासदन', 'कायाकल्प', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'निर्मला', 'गबन', 'गोदान' आदि प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

Scanned by CamScanner

'सुजान भगत' यह कहानी एक कर्तव्यपरायण, ईमानदार, मेहनती तथा दानवीर वृत्ति के किसान को प्रस्तुत करती है। इस कहानी का सुजान महतो मेहनत से खेती करता है, अपने खेती से निकले अनाज को वह खुले मन से दान के रूप में साधु तथा भिक्षु को देते रहता है। इसी दान–धर्म की वृत्ति ने उसे सुजान महतो से सुजान भगत बना दिया था। गाँव में उनका मान–सम्मान था लेकिन घर में यह मान–सम्मान तथा अधिकार घटने लगा। घर में सुजान महतो को आदर तो मिलता लेकिन अधिकार नहीं। दरवाजे पर आये एक भिखारी को जब वह एक सेर जौ देने लगा तो बेटे भोला ने उनके हाथ से वह जौ की छबड़ी छीनकर उसके अधिकार को आहत किया।

सुजान भगत बेटे के इस रवैये से दुखी हो जाता है। अपनी वृद्धावस्था में भी खेत में परिश्रम कर पुनः अपने अधिकार को प्राप्त कर लेता है। मनुष्य को समाज में मान–सम्मान केवल आर्थिक समृद्धि से नहीं मिलता है, उसे उसके साथ–साथ मेहनत, ईमानदारी और दानवीर वृत्ति को भी अपनाना होता है। मानव जीवन में ईमानदारी और मेहनत के प्रति लगाव महत्वपूर्ण होता है यही इस कहानी की मूल संवेदना है।

2

सुजान भगत

– प्रेमचंद

सीधे–सादे किसान धन हाथ आते ही धर्म और कीर्ति की ओर झुकते हैं। दिव्य समाज की भाँति वे पहले अपने भोग–विलास की ओर नहीं दौड़ते। सुजान की खेती में कई साल से कंचन बरस रहा था। मेहनत तो गाँव के सभी किसान करते थे, पर सुजान के चंद्रमा बली थे, ऊसर में भी दाना छींट आता तो कुछ न कुछ पैदा हो जाता था। तीन वर्ष लगातार ऊख लगती गयी। उधर गुड़ का भाव तेज था। कोई दो–ढाई हजार हाथ में आ गये। बस चित्त की वृत्ति धर्म की ओर झुक पड़ी। साधु–संतों का आदर–सत्कार होने लगा, द्वार पर धूनी जलने लगी; कानूनगो इलाके में आते, तो सुजान महतो के चौपाल में ठहरते। हल्के के हेड कांस्टेबल, थानेदार, शिक्षा–विभाग के अफसर, एक न एक उस चौपाल में पड़ा ही रहता। महतो मारे खुशी के फूले न समाते। धन्य भाग ! उसके द्वार पर अब इतने बड़े–बड़े हाकिम आकर ठहरते हैं। जिन हाकिमों के सामने उसका मुँह न खुलता था, उन्हीं की अब 'महतो–महतो' करते जबान सूखती थी। कभी–कभी भजन–भाव हो जाता। एक महात्मा ने डौल अच्छा देखा तो गाँव में आसन जमा दिया। गाँजे और चरस की बहार उड़ने लगी। एक ढोलक आयी, मजीरे मँगाये, सत्संग होने लगा। यह सब सुजान के दम का जलूस था। घर में सेरों दूध होता, मगर सुजान के कंठ तले एक बूँद भी जाने की कसम थी। कभी हाकिम लोग चखते, कभी महात्मा लोग। किसान को दूध–घी से क्या मतलब, उसे रोटी और साग चाहिए। सुजान की नम्रता का अब पारावार न था। सबके सामने सिर झुकाये रहता, कहीं लोग यह न कहने लगें कि धन पाकर उसे घमंड हो गया है। गाँव में कुल तीन कुएँ थे, बहुत–से खेतों में पानी न पहुँचता था, खेती मारी जाती थी। सुजान ने एक पक्का कुआँ बनवा दिया। कुएँ का विवाह हुआ, यज्ञ हुआ, ब्रह्मभोज हुआ। जिस दिन पहली बार पुर चला, सुजान को मानो चारों पदार्थ मिल गये। जो काम गाँव में किसी ने न किया था, वह बाप–दादा के पुण्य–प्रताप से सुजान ने कर दिखाया।

एक दिन गाँव में गया के यात्री आ कर ठहरे। सुजान ही के द्वार पर

Scanned by CamScanner

उनका भोजन बना। सुजान के मन में भी गया करने की बहुत दिनों से इच्छा थी। यह अच्छा अवसर देखकर वह भी चलने को तैयार हो गया।

उसकी स्त्री बुलाकी ने कहा– अभी रहने दो, अगले साल चलेंगे।

सुजान ने गंभीर भाव से कहा– अगले साल क्या होगा, कौन जानता है। धर्म के काम में मीनमेख निकालना अच्छा नहीं। जिंदगानी का क्या भरोसा ?

सुजान– भगवान् की इच्छा होगी, तो फिर रुपये हो जाएँगे। उनके यहाँ किस बात की कमी है।

बुलाकी इसका क्या जवाब देती ? सत्कार्य में बाधा डाल कर अपनी मुक्ति क्यों बिगाड़ती ? प्रातःकाल स्त्री और पुरुष गया करने चले। वहाँ से लौटे तो, यज्ञ और ब्रह्मभोज की ठहरी। सारी बिरादरी निमंत्रित हुई, ग्यारह गाँवों में सुपारी बँटी। इस धूम–धाम से कार्य हुआ कि चारों ओर वाह–वाह मच गयी। सब यही कहते थे कि भगवान् धन दे, तो दिल भी ऐसा दे। घमंड तो छू नहीं गया, अपने हाथ से पत्तल उठाता फिरता था, कुल का नाम जगा दिया। बेटा हो, तो ऐसा हो। बाप मरा, तो घर में भूनी–भाँग भी नहीं थी। अब लक्ष्मी घुटने तोड़ कर आ बैठी हैं।

एक द्वेषी ने कहा– कहीं गड़ा हुआ धन पा गया है। इस पर चारों ओर से उस पर बौछारें पड़ने लगीं– हाँ, तुम्हारे बाप–दादा जो खजाना छोड़ गये थे, यही उसके हाथ लग गया है। अरे भैया, यह धर्म की कमाई है। तुम भी तो छाती फाड़ कर काम करते हो, क्यों ऐसी ऊख नहीं लगती ? क्यों ऐसी फसल नहीं होती? भगवान् आदमी का दिल देखते हैं। जो खर्च करता है, उसी को देते हैं।

सुजान महतो सुजान भगत हो गये। भगतों के आचार–विचार कुछ और होते हैं। वह बिना स्नान किये कुछ नहीं खाता। गंगा जी अगर घर से दूर हों और वह रोज स्नान करके दोपहर तक घर न लौट सकता हो, तो पर्वों के दिन तो उसे अवश्य ही नहाना चाहिए। भजन–भाव उसके घर अवश्य होना चाहिए। पूजा–अर्चना उसके लिए अनिवार्य है। खान–पान में भी उसे बहुत विचार रखना पड़ता है। सबसे बड़ी बात यह है कि झूठ का त्याग करना पड़ता है। भगत झूठ नहीं बोल सकता। साधारण मनुष्य को अगर झूठ का दंड एक मिले, तो भगत को एक लाख से कम नहीं मिल सकता। अज्ञान की अवस्था में कितने ही अपराध क्षम्य हो जाते हैं। ज्ञानी के लिए क्षमा नहीं है, प्रायश्चित नहीं है, यदि है तो बहुत ही कठिन। सुजान को भी अब भगतों की मर्यादा को निभाना पड़ा। अब तक उसका जीवन मजदूर का जीवन था। उसका कोई आदर्श, कोई मर्यादा उसके सामने न थी। अब उसके जीवन में विचार का उदय हुआ, जहाँ का मार्ग काँटों से भरा हुआ है। स्वार्थ–सेवा ही पहले उसके जीवन का लक्ष्य था, इसी काँटे से वह परिस्थितियों को तौलता था। वह अब उन्हें औचित्य के काँटों पर तौलने लगा। यों कहो कि जड़–जगत से निकल कर उसने चेतन–जगत् में प्रवेश किया। उसने कुछ

लेन–देन करना शुरू किया था पर अब उसे ब्याज लेते हुए आत्मग्लानि–सी होती थी। यहाँ तक कि गउओं को दुहाते समय उसे बछड़ों का ध्यान बना रहता था, कहीं बछड़ा भूखा न रह जाए, नहीं तो उसका रोआँ दुखी होगा। वह गाँव का मुखिया था, कितने ही मुकदमों में उसने झूठी शहादतें बनवायी थीं, कितनों से डॉड़ लेकर मामले का रफा–दफा करा दिया था। अब इन व्यापारों से उसे घृणा होती थी। झूठ और प्रपंच से कोसों दूर भागता था। पहले उसकी यह चेष्टा होती थी कि मजदूरों से जितना काम लिया जा सके लो और मजदूरी जितनी कम दी जा सके, दो; पर अब उसे मजदूर के काम की कम, मजदूरी की अधिक चिंता रहती थी– कहीं बेचारे मजदूर का रोयाँ न दुखी हो जाए। वह उसका वाक्यांश–सा हो गया था, किसी का रोयाँ न दुखी हो जाए। उसके दोनों जवान बेटे बात–बात में उस पर फब्तियाँ कसते, यहाँ तक कि बुलाकी भी अब उसे कोरा भगत समझने लगी थी, जिसे घर के भले–बुरे से कोई प्रयोजन न था। चेतन–जगत् में आकर सुजान भगत कोरे भगत रह गये।

सुजान के हाथों से धीरे–धीरे अधिकार छीने जाने लगे। किस खेत में क्या बोना है, किसको क्या देना है, किसको क्या लेना है, किस भाव क्या चीज बिकी, ऐसी–ऐसी महत्त्वपूर्ण बातों में भी भगत जी की सलाह न ली जाती थी। भगत के पास कोई जाने ही न पाता। दोनों लड़के या स्वयं बुलाकी दूर ही से मामला तय कर लिया करती। गाँव भर में सुजान का मान–सम्मान बढ़ता था, अपने घर में घटता था। लड़के उसका सत्कार अब बहुत करते। हाथ से चारपाई उठाते देख लपक कर खुद उठा लाते, चिलम न भरने देते, यहाँ तक कि उसकी धोती छाँटने के लिए भी आग्रह करते थे। मगर अधिकार उसके हाथ में न था। वह अब घर का स्वामी नहीं, मंदिर का देवता था।

(3)

एक दिन बुलाकी ओखली में दाल छाँट रही थी। एक भिखमंगा द्वार पर आकर चिल्लाने लगा। बुलाकी ने सोचा, दाल छाँट लूँ, तो उसे कुछ दे दूँ। इतने में बड़ा लड़का भोला आकर बोला– अम्माँ, एक महात्मा द्वार पर खड़े गला फाड़ रहे हैं ? कुछ दे दो। नहीं तो उनका रोयाँ दुखी हो जायगा।

बुलाकी ने उपेक्षा के भाव से कहा– भगत के पाँव में क्या मेहँदी लगी है, क्यों कुछ ले जाकर नहीं दे देते ? क्या मेरे चार हाथ हैं ? किस–किसका रोयाँ सुखी करूँ ? दिन भर तो ताँता लगा रहता है।

भोला–चौपट करने पर लगे हुए हैं, और क्या ? अभी महँगू बेंग देने आया था। हिसाब से 7 मन हुए। तौला तो पौने सात मन ही निकले। मैंने कहा– दस सेर और ला, तो आप बैठे–बैठे कहते हैं, अब इतनी दूर कहाँ जाएगा। भरपाई लिख दो, नहीं तो उसका रोयाँ दुखी होगा। मैंने भरपाई नहीं लिखी। सात सेर बाकी लिख दी।

Scanned by CamScanner

बुलाकी– बहुत अच्छा किया तुमने, बकने दिया करो। दस–पाँच दफे मुँह की खा जाऐंगे, तो आप ही बोलना छोड़ देंगे।

भोला– दिन भर एक न एक खुचड़ निकालते रहते हैं। सौ दफे कह दिया कि तुम घर–गृहस्थी के मामले में न बोला करो, पर इनसे बिना बोले रहा ही नहीं जाता।

बुलाकी– मैं जानती कि इनका यह हाल होगा, तो गुरुमंत्र न लेने देती।

भोला– भगत क्या हुए कि दीन–दुनिया दोनों से गये। सारा दिन पूजा–पाठ में ही उड़ जाता है। अभी ऐसे बूढ़े नहीं हो गये कि कोई काम ही न कर सकें।

बुलाकी ने आपत्ति की– भोला, यह तुम्हारा कुन्याय है। फावड़ा, कुदाल अब उनसे नहीं हो सकता, लेकिन कुछ न कुछ तो करते ही रहते हैं। बैलों को सानी–पानी देते हैं, गाय दुहाते हैं और भी जो कुछ हो सकता है, करते हैं।

भिक्षुक अभी तक खड़ा चिल्ला रहा था। सुजान ने जब घर में से किसी को कुछ लाते न देखा, तो उठकर अंदर गया और कठोर स्वर से बोला– तुम लोगों को कुछ सुनायी नहीं देता कि द्वार पर कौन घंटे भर से खड़ा भीख माँग रहा है। अपना काम तो दिन भर करना ही है, एक छन भगवान् का काम भी तो किया करो।

बुलाकी– तुम तो भगवान् का काम करने को बैठे ही हो, क्या घर भर भगवान् ही का काम करेगा ?

सुजान– कहाँ आटा रखा है, लाओ, मैं ही निकाल कर दे आऊँ। तुम रानी बन कर बैठो।

बुलाकी– आटा मैंने मर–मर कर पीसा है, अनाज दे दो। ऐसे मुड़चिरों के लिए पहर रात से उठकर चक्की नहीं चलाती हूँ।

सुजान भंडार घर में गये और एक छोटी–सी छबड़ी को जौ से भरे हुए निकले। जौ सेर भर से कम न था। सुजान ने जान–बूझकर, केवल बुलाकी और भोला को चिढ़ाने के लिए, भिक्षा परंपरा का उल्लंघन किया था। तिस पर भी यह दिखाने के लिए कि छबड़ी में बहुत ज्यादा जौ नहीं है, वह उसे चुटकी से पकड़े हुए थे। चुटकी इतना बोझ न सँभाल सकती थी। हाथ काँप रहा था। एक क्षण विलम्ब होने से छबड़ी के हाथ से छूट कर गिर पड़ने की सम्भावना थी। इसलिए वह जल्दी से बाहर निकल जाना चाहते थे। सहसा भोला ने छबड़ी उनके हाथ से छीन ली और त्यौरियाँ बदल कर बोला– सेंत का माल नहीं है, जो लुटाने चले हो। छाती फाड़–फाड़ कर काम करते हैं, तब दाना घर में आता है।

सुजान ने खिसिया कर कहा– मैं भी तो बैठा नहीं रहता।

भोला– भीख, भीख की ही तरह दी जाती है, लुटायी नहीं जाती। हम तो एक बेला खा कर दिन काटते हैं कि पति–पानी बना रहे, और तुम्हें लुटाने की सूझी है। तुम्हें क्या मालूम कि घर में क्या हो रहा है।

सुजान ने इसका कोई जवाब न दिया। बाहर आ कर भिखारी से कह दिया– बाबा, इस समय जाओ, किसी का हाथ खाली नहीं है, और पेड़ के नीचे बैठ कर विचारों में मग्न हो गया। अपने ही घर में उसका यह अनादर ! अभी यह अपाहिज नहीं है; हाथ–पाँव थके नहीं हैं; घर का कुछ न कुछ काम करता ही रहता है। उस पर यह अनादर ! उसी ने घर बनाया, यह सारी विभूति उसी के श्रम का फल है, पर अब इस घर पर उसका कोई अधिकार नहीं रहा। अब वह द्वार का कुत्ता है, पड़ा रहे और घरवाले जो रूखा–सूखा दे दें, वह खा कर पेट भर लिया करे। ऐसे जीवन को धिक्कार है। सुजान ऐसे घर में नहीं रह सकता।

संध्या हो गयी थी। भोला का छोटा भाई शंकर नारियल भर कर लाया। सुजान ने नारियल दीवार से टिका कर रख दिया ! धीरे–धीरे तम्बाकू जल गया। जरा देर में भोला ने द्वार पर चारपाई डाल दी। सुजान पेड़ के नीचे से न उठा।

कुछ देर और गुजारी। भोजन तैयार हुआ। भोला बुलाने आया। सुजान ने कहा– भूख नहीं है। बहुत मनावन करने पर भी न उठा। तब बुलाकी ने आ कर कहा – खाना खाने क्यों नहीं चलते ? जी तो अच्छा है ?

सुजान को सबसे अधिक क्रोध बुलाकी ही पर था। यह भी लड़कों के साथ है ! यह बैठी देखती रही और भोला ने मेरे हाथ से अनाज छीन लिया। इसके मुँह से इतना भी न निकला कि ले जाते हैं, तो ले जाने दो। लड़कों को न मालूम हो कि मैंने कितने श्रम से यह गृहस्थी जोड़ी है, पर यह तो जानती है। दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा। भादों की अँधेरी रात में मड़ैया लगाकर जुआर की रखवाली करता था। जेठ–बैसाख की दोपहरी में भी दम न लेता था, और अब मेरा घर पर इतना भी अधिकार नहीं है कि भीख तक न दे सकूँ। माना कि भीख इतनी नहीं दी जाती लेकिन इनको तो चुप रहना चाहिए था, चाहे मैं घर में आग ही क्यों न लगा देता। कानून से भी तो मेरा कुछ होता है। मैं अपना हिस्सा नहीं खाता, दूसरों को खिला देता हूँ; इसमें किसी के बाप का क्या साझा ? अब इस वक्त मनाने आयी है ! इसे मैंने फूल की छड़ी से भी नहीं छुआ, नहीं तो गाँव में ऐसी कौन औरत है, जिसने खसम की लातें न खायी हों, कभी कड़ी निगाह से देखा तक नहीं। रुपये–पैसे, लेना–देना, सब इसी के हाथ में दे रखा था। अब रुपये जमा कर लिये हैं, तो मुझी से घमंड करती है। अब इसे बेटे प्यारे हैं, मैं तो निखट्टू लुटाऊ, घर–फूँकू, घोंघा हूँ। मेरी इसे क्या परवाह। तब लड़के न थे, जब बीमार पड़ी थी और मैं गोद में उठाकर बैद के घर ले गया था। आज उसके बेटे हैं और यह उनकी माँ है। मैं तो बाहर का आदमी।

मुझसे घर से मतलब ही क्या। बोला – अब खा–पीकर क्या करूँगा, हल जोतने से रहा, फावड़ा चलाने से रहा। मुझे खिलाकर दाने को क्यों खराब करेगी ? रख दो, बेटे दूसरी बार खायँगे।

बुलाकी – तुम तो जरा–जरा–सी बात पर तिनक जाते हो। सच कहा

Scanned by CamScanner

है, बुढ़ापे में आदमी की बुद्धि मारी जाती है। भोला ने इतना तो कहा था कि इतनी भीख मत ले जाओ, या और कुछ ?

सुजान– हाँ बेचारा इतना कह कर रह गया। तुम्हें तो मजा तब आता, जब वह ऊपर से दो–चार डंडे लगा देता। क्यों ? अगर यही अभिलाषा है, तो पूरी कर लो। भोला खा चुका होगा, बुला लाओ। नहीं, भोला को क्यों बुलाती हो, तुम्हीं न जमा दो, दो–चार हाथ। इतनी कसर है, वह भी पूरी हो जाए।

बुलाकी – हाँ, और क्या, यही तो नारी का धरम ही है। अपने भाग सराहो कि मुझ–जैसी सीधी औरत पा ली। जिस बल चाहते हो, बिठाते हो। ऐसी मुँहजोर होती, तो तुम्हारे घर में एक दिन भी निबाह न होता।

सुजान– हाँ, भाई, वह तो मैं ही कह रहा हूँ कि देवी थीं और हो। मैं तब भी राक्षस था और अब भी दैत्य हो गया हूँ ! बेटे कमाऊ हैं, उनकी–सी न कहोगी, तो क्या मेरी–सी कहोगी, मुझसे अब क्या लेना–देना है ?

बुलाकी – तुम झगड़ा करने पर तुले बैठे हो और मैं झगड़ा बचाती हूँ कि चार आदमी हँसेंगे। चल कर खाना खा लो सीधे से, नहीं तो मैं जाकर सो रहूँगी।

सुजान– तुम भूखी क्यों सो रहोगी ? तुम्हारे बेटों की तो कमाई है। हाँ, मैं बाहरी आदमी हूँ।

बुलाकी– बेटे तुम्हारे भी तो हैं।

सुजान– नहीं, मैं ऐसे बेटों से बाज आया। किसी और के बेटे होंगे। मेरे बेटे होते, तो क्या मेरी दुर्गति होती ?

बुलाकी–गालियाँ दोगे तो मैं भी कुछ कह बैठूँगी। सुनती थी, मर्द बड़े समझदार होते हैं, पर तुम सबसे न्यारे हो। आदमी को चाहिए कि जैसा समय देखे वैसा काम करे। अब हमारा और तुम्हारा निबाह इसी में है कि नाम के मालिक बने रहें और वही करें जो लड़कों को अच्छा लगे। मैं यह बात समझ गयी, तुम क्यों नहीं समझ पाते ? जो कमाता है, उसी का घर में राज होता है, यही दुनिया का दस्तूर है। मैं बिना लड़कों से पूछे कोई काम नहीं करती, तुम क्यों अपने मन की करते हो ? इतने दिनों तक तो राज कर लिया, अब क्यों इस माया में पड़े हो? आधी रोटी खाओ, भगवान् का भजन करो और पड़े रहो। चलो, खाना खा लो।

सुजान– तो अब मैं द्वार का कुत्ता हूँ ?

बुलाकी– बात जो थी, वह मैंने कह दी। अब अपने को जो चाहो समझो। सुजान न उठे। बुलाकी हार कर चली गयी।

(4)

सुजान के सामने अब एक नयी समस्या खड़ी हो गयी थी। वह बहुत दिनों से घर का स्वामी था और अब भी ऐसा ही समझता रहा। परिस्थिति में कितना उलट फेर हो गया था, इसकी उसे खबर न थी। लड़के उसका

सेवा–सम्मान करते हैं, यह बात उसे भ्रम में डाले हुए थी। लड़के उसके सामने चिलम नहीं पीते, खाट पर नहीं बैठते, क्या यह सब उसके गृह–स्वामी होने का प्रमाण न था ? पर आज उसे यह ज्ञात हुआ कि यह केवल श्रद्धा थी, उसके स्वामित्व का प्रमाण नहीं। क्या इस श्रद्धा के बदले वह अपना अधिकार छोड़ सकता था ? कदापि नहीं। अब तक जिस घर में राज किया, उसी घर में पराधीन बन कर वह नहीं रह सकता। उसको श्रद्धा की चाह नहीं, सेवा की भूख नहीं। उसे अधिकार चाहिए। वह इस घर पर दूसरों का अधिकार नहीं देख सकता। मंदिर का पुजारी बन कर वह नहीं रह सकता।

न–जाने कितनी रात बाकी थी। सुजान ने उठकर गँड़ासे से बैलों का चारा काटना शुरू किया। सारा गाँव सोता था, पर सुजान करवी काट रहे थे। इतना श्रम उन्होंने अपने जीवन में कभी न किया था। जब से उन्होंने काम करना छोड़ा था, बराबर चारे के लिए हाय–हाय पड़ी रहती थी। शंकर भी काटता था, भोला भी काटता था पर चारा पूरा न पड़ता था। आज वह इन लौंडों को दिखा देंगे, चारा कैसे काटना चाहिए। उनके सामने कटिया का पहाड़ खड़ा हो गया। और टुकड़े कितने महीन और सुडौल थे, मानो साँचे में ढाले गये हों।

मुँह–अँधेरे बुलाकी उठी तो कटिया का ढेर देख कर दंग रह गयी। बोली– क्या भोला आज रात भर कटिया ही काटता रह गया ? कितना कहा कि बेटा, जी से जहान है, पर मानता ही नहीं। रात को सोया ही नहीं।

सुजान भगत ने ताने से कहा – वह सोता ही कब है ? जब देखता हूँ, काम ही करता रहता है। ऐसा कमाऊ संसार में और कौन होगा ?

इतने में भोला आँखे मलता हुआ बाहर निकला। उसे भी यह ढेर देख कर आश्चर्य हुआ। माँ से बोला–क्या शंकर आज बड़ी रात को उठा था, अम्माँ?

बुलाकी– वह तो पड़ा सो रहा है। मैंने तो समझा, तुमने काटी होगी।

भोला– मैं तो सबेरे उठ ही नहीं पाता। दिन भर चाहे जितना काम कर लूँ, पर रात को मुझसे नहीं उठा जाता।

बुलाकी– तो क्या तुम्हारे दादा ने काटी है ?

भोला– हाँ, मालूम तो होता है। रात भर सोये नहीं। मुझसे कल बड़ी भूल हुई। अरे, वह तो हल लेकर जा रहे हैं ! जान देने पर उतारू हो गये हैं क्या ?

बुलाकी– क्रोधी तो सदा के हैं। अब किसी की सुनेंगे थोड़े ही।

भोला–शंकर को जगा दो, मैं भी जल्दी से मुँह–हाथ धोकर हल ले जाऊँ। जब और किसानों के साथ भोला हल लेकर खेत में पहुँचा, तो सुजान आधा खेत जोत चुके थे। भोला ने चुपके से काम करना शुरू किया। सुजान से कुछ बोलने की उसकी हिम्मत न पड़ी।

दोपहर हुआ। सभी किसानों ने हल छोड़ दिये। पर सुजान भगत अपने काम में मग्न हैं। भोला थक गया है। उसकी बार–बार इच्छा होती है कि बैलों

Scanned by CamScanner

को खोल दे। मगर डर के मारे कुछ कह नहीं सकता। सबको आश्चर्य हो रहा है कि दादा कैसे इतनी मेहनत कर रहे हैं।

आखिर डरते–डरते बोला– दादा, अब तो दोपहर हो गया। हल खोल दें न ?

सुजान– हाँ, खोल दो। तुम बैलों को लेकर चलो, मैं डाँड़ फेंक कर आता हूँ।

भोला– मैं संझा को डाँड़ फेंक दूँगा।

सुजान– तुम क्या फेंक दोगे। देखते नहीं हो, खेत कटोरे की तरह गहरा हो गया है। तभी तो वीच में पानी जम जाता है। इस गोइँड़ के खेत में बीस मन का बीघा होता था। तुम लोगों ने इसका सत्यानाश कर दिया।

बैल खोल दिये गये। भोला बैलों को लेकर घर चला, पर सुजान डाँड़ फेंकते रहे। आध घंटे के बाद डाँड़ फेंक कर वह घर आये। मगर थकान का नाम न था। नहा–खाकर आराम करने के बदले उन्होंने बैलों को सहलाना शुरू किया। उनकी पीठ पर हाथ फेरा, उनके पैर मले, पूँछ सहलायी। बैलों की पूँछें खड़ी थीं। सुजान की गोद में सिर रखे उन्हें अकथनीय सुख मिल रहा था। बहुत दिनों के बाद आज उन्हें यह आनंद प्राप्त हुआ था। उनकी आँखों में कृतज्ञता भरी हुई थी। मानो वे कह रहे थे, हम तुम्हारे साथ रात–दिन काम करने को तैयार हैं।

अन्य कृषकों की भाँति भोला अभी कमर सीधी कर रहा था कि सुजान ने फिर हल उठाया और खेत की ओर चले। दोनों बैल उमंग से भरे दौड़े चले जाते थे, मानों उन्हें स्वयं खेत में पहुँचने की जल्दी थी।

भोला ने मड़ैया में लेटे–लेटे पिता को हल लिये जाते देखा, पर उठ न सका। उसकी हिम्मत छूट गयी। उसने कभी इतना परिश्रम न किया था। उसे बनी–बनायी गिरस्ती मिल गयी थी। उसे ज्यों–त्यों चला रहा था। इन दिनों वह घर का स्वामी बनने का इच्छुक न था। जवान आदमी को बीस धंधे होते हैं। हँसने–बोलने के लिए, गाने–बजाने के लिए भी तो उसे कुछ समय चाहिए। पड़ोस के गाँव में दंगल हो रहा है। जवान आदमी कैसे अपने को वहाँ जाने से रोकेगा? किसी गाँव में बारात आयी है, नाच–गाना हो रहा है। जवान आदमी क्यों उसके आनंद से वंचित रह सकता है ? वृद्धजनों के लिए ये बाधाएँ नहीं। उन्हें न नाच–गाने से मतलब, न खेल–तमाशे से गरज, केवल अपने काम से काम है।

बुलाकी ने कहा– भोला, तुम्हारे दादा हल लेकर गये।

भोला– जाने दो अम्माँ, मुझसे यह नहीं हो सकता।

(5)

सुजान भगत के इस नवीन उत्साह पर गाँव में टीकाएँ हुईं , निकल गयी

सारी भगती। बना हुआ था। माया में फँसा हुआ है। आदमी काहे को, भूत है।

मगर भगत जी के द्वार पर अब फिर साधु–संत आसन जमाये देखे जाते हैं। उनका आदर–सम्मान होता है। अबकी उसकी खेती ने सोना उगल दिया है। बखारी में अनाज रखने की जगह नहीं मिलती। जिस खेत में पाँच मन मुश्किल से होता था, उसी खेत में अबकी दस मन की उपज हुई है।

चैत का महीना था। खलिहानों में सतयुग का राज था। जगह–जगह अनाज के ढेर लगे हुए थे। यही समय है, जब कृषकों को भी थोड़ी देर के लिए अपना जीवन सफल मालूम होता है, जब गर्व से उनका हृदय उछलने लगता है। सुजान भगत टोकरे में अनाज भर–भर कर देते थे और दोनों लड़के टोकरे लेकर घर में अनाज रख आते थे। कितने ही भाट और भिक्षुक भगत जी को घेरे हुए थे। उनमें वह भिक्षुक भी था, जो आज से आठ महीने पहले भगत के द्वार से निराश होकर लौट गया था।

सहसा भगत ने उस भिक्षुक से पूछा– क्यों बाबा, आज कहाँ–कहाँ चक्कर लगा आये ?

भिक्षुक–अभी तो कहीं नहीं गया भगत जी, पहले तुम्हारे ही पास आया हूँ।

भगत– अच्छा, तुम्हारे सामने यह ढेर है। इसमें से जितना अनाज उठा कर ले जा सको, ले जाओ।

भिक्षुक ने क्षुब्ध नेत्रों से ढेर को देख कर कहा – जितना अपने हाथ से उठा कर दे दोगे, उतना ही लूँगा।

भगत– नहीं, तुमसे जितना उठ सके, उठा लो।

भिक्षुक के पास एक चादर थी ! उसने कोई दस सेर अनाज उसमें भरा और उठाने लगा। संकोच के मारे और अधिक भरने का उसे साहस न हुआ।

भगत उसके मन का भाव समझ कर आश्वासन देते हुए बोले–बस। इतना तो एक बच्चा भी उठा ले जायगा।

भिक्षुक ने भोला की ओर संदिग्ध नेत्रों से देख कर कहा– मेरे लिए इतना ही बहुत है।

भगत–नहीं तुम सकुचाते हो। अभी और भरो।

भिक्षुक ने एक पंसेरी अनाज और भरा, और फिर भोला की ओर सशंक दृष्टि से देखने लगा।

भगत–उसकी ओर क्या देखते हो, बाबा जी ? मैं जो कहता हूँ, वह करो। तुमसे जितना उठाया जा सके, उठा लो।

भिक्षुक डर रहा था कि कहीं उसने अनाज भर लिया और भोला ने गठरी न उठाने दी, तो कितनी भद्द होगी। और भिक्षुकों को हँसने का अवसर मिल जाएगा। सब यही कहेंगे कि भिक्षुक कितना लोभी है। उसे और अनाज भरने की हिम्मत न पड़ी।

Scanned by CamScanner

तब सुजान भगत ने चादर लेकर उसमें अनाज भरा और गठरी बाँध कर बोले– इसे उठा ले जाओ।

भिक्षुक– बाबा, इतना तो मुझसे उठ न सकेगा।

भगत– अरे ! इतना भी न उठ सकेगा ! बहुत होगा तो मन भर। भला जोर तो लगाओ, देखूँ, उठा सकते हो या नहीं।

भिक्षुक ने गठरी को आजमाया। भारी थी। जगह से हिली भी नहीं। बोला– भगत जी, यह मुझ से न उठ सकेगी !

भगत– अच्छा, बताओ किस गाँव में रहते हो ?

भिक्षुक– बड़ी दूर है भगत जी; अमोला का नाम तो सुना होगा !

भगत– अच्छा, आगे–आगे चलो, मैं पहुँचा दूँगा।

यह कहकर भगत ने जोर लगा कर गठरी उठायी और सिर पर रख कर भिक्षुक के पीछे हो लिये। देखने वाले भगत का यह पौरुष देखकर चकित हो गये। उन्हें क्या मालूम था कि भगत पर इस समय कौन–सा नशा था। आठ महीने के निरंतर अविरल परिश्रम का आज उन्हें फल मिला था। आज उन्होंने अपना खोया हुआ अधिकार फिर पाया था। वही तलवार, जो केले को भी नहीं काट सकती, सान पर चढ़ कर लोहे को काट देती है। मानव–जीवन में लाग बड़े महत्त्व की वस्तु है। जिसमें लाग है, वह बूढ़ा भी हो तो जवान है। जिसमें लाग नहीं, गैरत नहीं, वह जवान भी मृतक है। सुजान भगत में लाग थी और उसी ने उन्हें अमानुषीय बल प्रदान कर दिया था। चलते समय उन्होंने भोला की ओर सगर्व नेत्रों से देखा और बोले– ये भाट और भिक्षुक खड़े हैं, कोई खाली हाथ न लौटने पाये।

भोला सिर झुकाये खड़ा था, उसे कुछ बोलने का हौसला न हुआ। वृद्ध पिता ने उसे परास्त कर दिया था।

Scanned by CamScanner

जयशंकर प्रसाद

बहुमुखी प्रतिभा के धनी जयशंकर प्रसाद का जन्म 30 जनवरी 1890 को उत्तर प्रदेश के वाराणसी में हुआ और मृत्यु 14 जनवरी 1937 को वाराणसी में ही हुई। इनके पिता का नाम देवीप्रसाद था, जिनका परिवार 'सुंघनी साहु' के नाम से प्रसिद्ध था। परिवार में तम्बाकू का व्यवसाय होता था। जयशंकर प्रसाद की पढ़ाई स्कूल की अपेक्षा घर पर ही अधिक हुई। 12 वर्ष की आयु में पिता की मृत्यु और 15 वर्ष की आयु में माता की मृत्यु होने से परिवार की जिम्मेदारी इनपर आयी।

छायावादी काव्य–धारा के चार आधार स्तंभों में से एक कवि जयशंकर प्रसाद थे। मूलतः जयशंकर प्रसाद कवि होने के नाते उनके कथा साहित्य में भी भावुकता आयी है। प्रसाद ने 1909 में 'इंदु' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया था। पहली कहानी 'ग्राम' इंदु पत्रिका में प्रकाशित हुई तथा अंतिम कहानी 'सालवनी' 1935 में प्रकाशित हुई।

काव्य– झरना, आँसू, कानन कुसुम, करुणालय, महाराणा का महत्व, प्रेमपथिक, ध्रुवस्वामिनी, लहर, कामायनी।

नाटक– कल्याणी, परिचय, राजश्री, स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, जनमेजय का नागयज्ञ, एक घूंट।

कहानी–संग्रह– छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी, इन्द्रजाल।

उपन्यास – कंकाल, तितली, इरावती आदि।

निबन्ध–संग्रह – काव्य और कला तथा अन्य निबंध।

'पुरस्कार' कहानी में मधुलिका की भावात्मकता, भूमि के प्रति स्नेह और उसके आंतरिक द्वंद्व तथा पश्चाताप को प्रस्तुत किया गया है। कहानी में कोशल और मगध दो राज्यों का प्रसंग लिया गया है। मधुलिका कोशल के कृषक वीर सिंहमित्र की एक मात्र कन्या है। वीर सिंहमित्र ने मगध के वाराणसी युद्ध में अपना बलिदान देकर कोशल की लाज रख ली थी। कोशल में प्रतिवर्ष कृषि महोत्सव मनाने की परम्परा है, जिसमें एक दिन के लिए महाराज को कृषक बनना पड़ता है। नियम के अनुसार किसी भी अच्छी भूमि को इस उत्सव के लिए चुनकर भूमि का चौगुना मूल्य दिया जाता है। वह राजा का खेत कहलाता है।

कृषि महोत्सव के लिए मधुलिका की भूमि का चयन किया जाता है।

Scanned by CamScanner

लेकिन पिता की भूमि बेचने से मधुलिका इनकार करती है। वह उदास होती है, उसे मगध का राजकुमार अरुण देखता है और अपने प्रेम का निवेदन कर उसे कोशल नरेश से भूमि वापस दिलवाने की बात करता है। मधुलिका कोशल का राष्ट्रीय नियम बदलना नहीं चाहती, भले ही राजा ने उसकी भूमि पर अधिकार जमाया हो।

मधुलिका दूसरे खेतों में काम करते हुए दरिद्र जीवन बिताती है। तीन वर्ष पश्चात विद्रोही राजकुमार अरुण आकर नए राज्य का निर्माण कर मधुलिका को राजरानी के सम्मान से सिंहासन पर बिठाने का प्रस्ताव रखता है। राजकुमार के प्रस्ताव को स्वीकार करने के पश्चात उसे पता चलता है कि राजकुमार ने कोशल पर विजय पाने का प्रण किया है। मधुलिका को पश्चाताप होता है और वह कोशल महाराज को यह बात बताती है, जिससे महाराज को दुर्ग रक्षा करने में सफलता मिली। श्रावस्ती दुर्ग को एक दस्यु के हाथ में जाने से बचाकर मधुलिका ने कोशल पर उपकार किया था। राजा अरुण को प्राण दण्ड देते हैं और मधुलिका को उसकी खेती पुरस्कार के रूप में देने की बात करते हैं लेकिन मधुलिका उस पुरस्कार को न स्वीकार कर अरुण के साथ प्राण दण्ड की मांग करती है। यहाँ मधुलिका का अपनी भूमि के प्रति प्रेम, पिता के बलिदान के प्रति श्रद्धा और राजकुमार अरुण का साथ देने का पश्चाताप व्यक्त होता है।

3

पुरस्कार

- जयशंकर प्रसाद

आर्द्रा नक्षत्र; आकाश में काले–काले बादलों की घुमड़, जिसमें देव–दुन्दुभी का गम्भीर घोष। प्राची के निरभ्र कोने से स्वर्ण–पुरुष झाँकने लगा। – देखने महाराज की सवारी। शैलमाला के अंचल में समतल उर्वरा भूमि से सोंधी बास उठ रही थी। नगर–तोरण से जयघोष हुआ, भीड़ में गजराज का चामरधारी शुण्ड उन्नत दिखायी पड़ा। वह हर्ष और उत्साह का समुद्र हिलोर भरता हुआ आगे बढ़ने लगा।

प्रभात की हेम–किरणों से अनुरंजित नन्हीं–नन्हीं बूँदों का एक झोंका स्वर्ण–मल्लिका के समान बरस पड़ा। मंगल सूचना से जनता ने हर्ष–ध्वनि की।

रथों, हाथियों और अश्वारोहोइयों की पंक्ति जम गई। दर्शकों की भीड़ भी कम न थी। गजराज बैठ गया, सीढ़ियों से महाराज उतरे। सौभाग्यवती और कुमारी सुन्दरियों के दो दल, आम्रपल्लवों से सुशोभित मंगलकलश और फूल, कुंकुम तथा खीलों से भरे थाल लिए, मधुर गान करते हुए आगे बढ़े।

महाराज के मुख पर मधुर मुस्कान थी। पुरोहित वर्ग ने स्वस्त्ययन किया। स्वर्ण–रंजित हल की मूठ पकड़कर महाराज ने जुते हुए सुन्दर पुष्ट बैलों को चलने का संकेत किया। बाजे बजने लगे। किशोरी कुमारियों ने खीलों और फूलों की वर्षा की।

कोशल का यह उत्सव प्रसिद्ध था। एक दिन के लिए महाराज को कृषक बनना पड़ता – उस दिन इन्द्र–पूजन की धूम–धाम होती; गोठ होती। नगर–निवासी उस पहाड़ी भूमि में आनन्द मनाते। प्रतिवर्ष कृषि का यह महोत्सव उत्साह से सम्पन्न होता; दूसरे राज्यों से भी युवक राजकुमार इस उत्सव में बड़े चाव से आकर योग देते।

मगध का एक राजकुमार अरुण अपने रथ पर बैठा बड़े कुतूहल से यह दृश्य देख रहा था।

बीजों का एक थाल लिए कुमारी मधूलिका महाराज के साथ थी। बीज बोते हुए महाराज जब हाथ बढ़ाते, तब मधूलिका उनके सामने थाल कर देती। यह खेत मधूलिका का था, जो इस साल महाराज ने खेती के लिए चुना था;

Scanned by CamScanner

इसलिए बीज देने का सम्मान मधूलिका ही को मिला। वह कुमारी थी। सुन्दरी थी। कौशेयवसन उसके शरीर पर इधर–उधर लहराता हुआ स्वयं शोभित हो रहा था। वह कभी उसे सम्हालती और कभी अपने रूखे अलकों को। कृषक बालिका के शुभ्र भाल पर श्रमकणों की भी कमी न थी, वे सब वरौनियों में गुँथे जा रहे थे। सम्मान और लज्जा उसके अधरों पर मन्द मुस्कराहट के साथ सिहर उठते; किन्तु महाराज को बीज देने में उसने कोई शिथिलता नहीं की। सब लोग महाराज का हल चलाना देख रहे थे– विस्मय से, कुतूहल से और अरुण देख रहा था, कृषक कुमारी मधूलिका को। आह कितना भोला सौन्दर्य ! कितनी सरल चितवन !

उत्सव का प्रधान कृत्य समाप्त हो गया। महाराज ने मधूलिका के खेत का पुरस्कार दिया, थाल में कुछ स्वर्ण–मुद्राएँ। वह राजकीय अनुग्रह था। मधूलिका ने थाली सिर से लगा ली; किन्तु साथ ही उसमें की स्वर्ण–मुद्राओं को महाराज पर न्योछावर करके बिखेर दिया। मधूलिका की उस समय की वह उर्जस्वित मूर्ति लोग आश्चर्य से देखने लगे। महाराज की भृकुटि भी जरा चढ़ी ही थी कि मधूलिका ने सविनय कहा–

देव ! यह मेरे पितृ–पितामहों की भूमि है। इसे बेचना अपराध है; इसलिए मूल्य स्वीकार करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है। महाराज के बोलने के पहले ही वृद्ध मन्त्री ने तीखे स्वर में कहा– अबोध! क्या बक रही है। राजकीय अनुग्रह का तिरस्कार ! तेरी भूमि से चौगुना मूल्य है; फिर कोशल का तो यह सुनिश्चित राष्ट्रीय नियम है। तू आज से राजकीय रक्षण पाने की अधिकारिणी हुई, इस धन से अपने को सुखी बना।

–राजकीय रक्षण की अधिकारिणी तो सारी प्रजा है, मंत्रिवर ! ..... महाराज को भूमि–समर्पण करने में तो मेरा कोई विरोध न था और न है; किन्तु मूल्य स्वीकार करना असंभव है। – मधूलिका उत्तेजित हो उठी थी।

महाराज के संकेत करने पर मन्त्री ने कहा–देव ! वाराणसी–युद्ध के अनन्यतम वीर सिंहमित्र की यह एकमात्र कन्या है। – महाराज चौंक उठे – सिंहमित्र की कन्या ! जिसने मगध के सामने कोशल की लाज रख ली थी, उसी वीर की मधूलिका कन्या है ?

– हाँ, देव! – सविनय मंत्री ने कहा।

– इस उत्सव के परम्परागत नियम क्या हैं, मंत्रिवर ?– महाराज ने पूछा।

– देव, नियम तो बहुत साधारण है। किसी भी अच्छी भूमि को इस उत्सव के लिए चुनकर नियमानुसार पुरस्कार–स्वरूप उसका मूल्य दे दिया जाता है। वह भी अत्यन्त अनुग्रहपूर्वक अर्थात भू–सम्पत्ति का चौगुना मूल्य उसे मिलता है। उस खेती को वही व्यक्ति वर्ष भर देखता है। वह राजा का खेत कहा जाता है।

महाराज को विचार–संघर्ष से विश्राम की अत्यन्त आवश्यकता थी।

महाराज चुप रहे। जयघोष के साथ सभा विसर्जित हुई। सब अपने–अपने शिविरों में चले गये। किन्तु मधूलिका को उत्सव में फिर किसी ने न देखा। वह अपने खेतों की सीमा पर विशाल मधूक–वृक्ष के चिकने हरे पत्तों की छाया में अनमनी चुपचाप बैठी रही।

रात्रि का उत्सव अब विश्राम ले रहा था। राजकुमार अरुण उसमें सम्मिलित नहीं हुआ– अपने विश्राम भवन में जागरण कर रहा था। आँखों में नींद न थी। प्राची में जैसी गुलाबी खिल रही थी, वह रंग उसकी आँखों में था। सामने देखा तो मुण्डेर पर कपोती एक पैर पर खड़ी पंख फैलाये अँगड़ाई ले रही थी। अरुण उठ खड़ा हुआ। द्वार पर सुसज्जित अश्व था, वह देखते–देखते नगर–तोरण पर जा पहुँचा। रक्षक–गण ऊँघ रहे थे, अश्व के पैरों के शब्द से चौंक उठे।

युवक–कुमार तीर–सा निकल गया। सिन्धुदेश का तुरंग प्रभात के पवन से पुलकित हो रहा था। घूमता–घूमता अरुण उसी मधूक–वृक्ष के नीचे पहुँचा, जहाँ मधूलिका अपने हाथ पर सिर धरे हुए खिन्न–निद्रा का सुख ले रही थी।

अरुण ने देखा, एक छिन्न माधवीलता वृक्ष की शाखा से च्युत होकर पड़ी है। सुमन मुकुलित, भ्रमर निस्पन्द थे। अरुण ने अपने अश्व को मौन रहने का संकेत किया, उस सुषमा को देखने के लिए, परन्तु कोकिल बोल उठा। जैसे उसने अरुण से प्रश्न किया– छिः, कुमारी के सोये हुए सौंदर्य पर दृष्टिपात करने वाले धृष्ट, तुम कौन ? मधूलिका की आँखें खुल पड़ीं। उसने देखा, एक अपरिचित युवक। वह संकोच से उठ बैठी। – भद्रे ! तुम्हीं न कल के उत्सव की संचालिकता रही हो ?

– उत्सव ! हाँ, उत्सव ही तो था।

– कल उस सम्मान.....

– क्यों, आपको कल का स्वप्न सता रहा है ? भद्रे ! आप क्या मुझे इस अवस्था में सन्तुष्ट न रहने देंगे?

मेरा हृदय उस छवि का भक्त बन गया है, देवि !

– मेरे उस अभिनय का–मेरी विडम्बना का। आह ! मनुष्य कितना निर्दय है, अपरिचित! क्षमा करो जाओ अपने मार्ग।

– सरलता की देवि! मैं मगध का राजकुमार तुम्हारे अनुग्रह का प्रार्थी हूँ– मेरे हृदय की भावना अवगुंठन में रहना नहीं जानती। उसे अपनी.....।

– राजकुमार ! मैं कृषक–बालिका हूँ। आप नन्दनबिहारी और मैं पृथ्वी पर परिश्रम करके जीने वाली। आज मेरी स्नेह की भूमि पर से मेरा अधिकार छीन लिया गया है। मैं दुःख से विकल हूँ ; मेरा उपहास न करो।

– मैं कोशल नरेश से तुम्हारी भूमि तुम्हें दिलवा दूँगा।

– नहीं, वह कोशल का राष्ट्रीय नियम है। मैं उसे बदलना नहीं चाहती–चाहे उससे मुझे कितना ही दुःख हो।

– तब तुम्हारा रहस्य क्या है?

Scanned by CamScanner

– यह हृदय मानव–हृदय का है, मेरा नहीं। राजकुमार, नियमों से यदि मानव–हृदय बाध्य न होता, तो आज मगध के राजकुमार का हृदय किसी राजकुमारी की ओर न खिंचकर एक कृषक–बालिका का अपमान करने न आता। – मधूलिका उठ खड़ी हुई।

चोट खाकर राजकुमार लौट पड़ा। किशोर किरणों में उसका रत्नकिरीट चमक उठा। अश्व वेग से चला जा रहा था और मधूलिका निष्ठुर प्रहार करके क्या स्वयं आहत न हुई। उसके हृदय में टीस–सी होने लगी। वह सजल नेत्रों से उड़ती हुई धूल को देखने लगी।

मधूलिका ने राजा का प्रतिपादन, अनुग्रह नहीं लिया। वह दूसरे खेतों में काम करती और चौथे पहर रूखी–सूखी खाकर पड़ रहती। मधूक–वृक्ष के नीचे छोटी–सी पर्णकुटीर थी। सूखे ठंढलों से उसकी दीवार बनी थी। मधूलिका का वही आश्रय था। कठोर परिश्रम से जो रूखा अन्न मिलता वही उसकी साँसों को बढ़ाने के लिए पर्याप्त था।

दुबली होने पर भी उसके अंग पर तपस्या की कान्ति थी। आस–पास के कृषक उसका आदर करते। वह एक आदर्श बालिका थी। दिन, सप्ताह, महीने और वर्ष बीतने लगे।

शीतकाल की रजनी, मेघों से भरा आकाश, जिसमें बिजली की दौड़–धूप। मधूलिका का छाजन टपक रहा था! ओढ़ने की कमी थी। वह ठिठुरकर एक कोने में बैठी थी। मधूलिका अपने अभाव को आज बढ़ाकर सोच रही थी। जीवन से सामंजस्य बनाये रखने वाले उपकरण तो अपनी सीमा निर्धारित रखते हैं, परन्तु उनकी आवश्यकता और कल्पना भावना के साथ बढ़ती–घटती रहती है। आज बहुत दिनों पर उसे बीती हुई बात स्मरण हुई। दो, नहीं–नहीं तीन वर्ष हुए होंगे, इसी मधूक के नीचे प्रभात में– अरुण राजकुमार ने क्या कहा था ?

वह अपने हृदय से पूछने लगी–उन चाटुकारी के शब्दों को सुनने के लिए उत्सुक–सी वह पूछने लगी–क्या कहा था? दुःख–दग्ध हृदय उन स्वप्न–सी बातों को स्मरण रख सकता था? और स्मरण ही होता, तो भी कष्टों की इस काली निशा में वह कहने का साहस करता। हाय री बिडम्बना!

आज मधूलिका उन बीते हुए क्षणों को लौटा लेने के लिए विकल थी। दारिद्रय की ठोकरों ने उसे व्यथित और अधीर कर दिया है। मगध की प्रसादमाला के वैभव का काल्पनिक चित्र–उन सूखे डंठलों के रन्ध्रों से, नभ में–बिजली के आलोक में–नाचता हुआ दिखाई देने लगा। खिलवाड़ी शिशु जैसे श्रावण की संध्या में जुगनूँ को पकड़ने के लिए हाथ लपकाता है, वैसे ही मधूलिका मन–ही–मन कह रही थी। 'अभी वह निकल गया।' वर्षा ने भीषण रूप धारण किया। गड़गड़ाहट बढ़ने लगी, ओले पड़ने की सम्भावना थी। मधूलिका अपनी जर्जर झोपड़ी के लिए काँप उठी। सहसा बाहर कुछ शब्द हुआ –

– कौन है यहाँ। पथिक को आश्रय चाहिए।

मधूलिका ने डंठलों का कपाट खोल दिया। बिजली चमक उठी। उसने देखा, एक पुरुष घोड़े की डोर पकड़े खड़ा है। सहसा वह चिल्ला उठी–राजकुमार!

– मधूलिका ? आश्चर्य से युवक ने कहा।

एक क्षण के लिए सन्नाटा छा गया। मधूलिका अपनी कल्पना को सहसा प्रत्यक्ष देखकर चकित हो गई–इतने दिनों के बाद आज फिर!

अरुण ने कहा– कितना समझाया मैंने–परन्तु.....

मधूलिका अपनी दयनीय अवस्था पर संकेत करने देना नहीं चाहती थी। उसने कहा– और आज आपकी यह क्या दशा है?

सिर झुकाकर अरुण ने कहा–मैं मगध का विद्रोही निर्वासित कोशल में जीविका खोजने आया हूँ।

मधूलिका उस अन्धकार में हँस पड़ी–मगध के विद्रोही राजकुमार का स्वागत करे एक अनाथिनी कृषक–बालिका, यह भी एक विडम्बना है, तो भी मैं स्वागत के लिए प्रस्तुत हूँ।

शीतकाल की निस्तब्ध रजनी, कुहरे से धुली हुई चाँदनी, हाड़ कँपा देने वाला समीर, तो भी अरुण और मधूलिका दोनों पहाड़ी के गह्वर के द्वार पर वट–वृक्ष के नीचे बैठे हुए बातें कर रहे हैं। मधूलिका की वाणी में उत्साह था, किन्तु अरुण जैसे अत्यन्त सावधान होकर बोलता।

मधूलिका ने पूछा– जब तुम इतनी विपन्न अवस्था में हो, तो फिर इतने सैनिकों को साथ रखने की क्या आवश्यकता है ?

– मधूलिका ! बाहुबल ही तो वीरों की आजीविका है। ये मेरे जीवन–मरण के साथी हैं, भला मैं इन्हें कैसे छोड़ देता ? और करता ही क्या ?

– भूल न करो, मैं अपने बाहुबल पर भरोसा करता हूँ। नये राज्य की स्थापना कर सकता हूँ। निराश क्यों हो जाऊँ! – अरुण के शब्दों में कम्पन था; वह जैसे कुछ कहना चाहता था; पर वह कह न सकता था।

– नवीन राज्य ! ओहो, तुम्हारा उत्साह तो कम नहीं। भला कैसे ? कोई ढंग बताओ, तो मैं भी कल्पना का आनन्द ले लूँ।

– कल्पना का आनन्द नहीं मधूलिका, मैं तुम्हें राजरानी के सम्मान से सिंहासन पर बिठाऊँगा ! तुम अपने छिने हुए खेत की चिन्ता करके भयभीत न हो।

एक क्षण में सरल मधूलिका के मन में प्रसाद का अन्धड़ बहने लगा– द्वन्द्व मच गया। उसने कहा–आह, मैं सचमुच आज तक तुम्हारी प्रतीक्षा करती थी, राजकुमार !

अरुण ढिठाई से उसके हाथों को दबाकर बोला–तो मेरा भ्रम था, तुम सचमुच मुझे प्यार करती हो ?

युवती का वक्षस्थल फूल उठा, वह हाँ भी नहीं कह सकी, ना भी नहीं।

Scanned by CamScanner

अरुण ने उसकी अवस्था का अनुभव कर लिया। कुशल मनुष्य के समान उसने अवसर को हाथ से न जाने दिया। तुरन्त बोल उठा–तुम्हारी इच्छा हो, तो प्राणों से पण लगाकर मैं तुम्हें इस कोशल–सिंहासन पर बिठा दूँ। मधूलिके ! अरुण के खड्ग का आतंक देखोगी ? मधूलिका एक बार काँप उठी। वह कहना चाहती थी ....नहीं, किन्तु उसके मुँह से निकला– क्या ?

– सत्य मधूलिका, कोशल–नरेश तभी से तुम्हारे लिए चिन्तित हैं। यह मैं जानता हूँ, तुम्हारी साधारण–सी प्रार्थना वह अस्वीकार न करेंगे और मुझे यह भी विदित है कि कोशल से सेनापति अधिकांश सैनिकों के साथ पहाड़ी दस्युओं का दमन करने के लिए बहुत दूर चले गये हैं।

मधूलिका की आँखों के आगे बिजलियाँ हँसने लगीं। दारुण भावना से उसका मस्तक विकृत हो उठा। अरुण ने कहा–तुम बोलती नहीं हो?

– जो कहोगे, वह करूँगी.....मंत्रमुग्ध–सी मधूलिका ने कहा।

स्वर्णमंच पर कोशल–नरेश अर्द्धनिद्रित अवस्था में आँखें मुकुलित किये हैं। एक चामर धारिणी युवती पीछे खड़ी अपनी कलाई बड़ी कुशलता से घुमा रही है। चामर के शुभ्र आन्दोलन उस प्रकोष्ठ में धीरे–धीरे संचलित हो रहे हैं। ताम्बूल–वाहिनी प्रतिमा के समान दूर खड़ी है।

प्रतिहारी ने आकर कहा–जय हो देव! एक स्त्री कुछ प्रार्थना करने आई है। आँखें खोलते हुए महाराज ने कहा–स्त्री ! प्रार्थना करने आई है? आने दो। प्रतिहारी के साथ मधूलिका आई। उसने प्रणाम किया। महाराज ने स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखा और कहा–तुम्हें कहीं देखा है?

– तीन बरस हुए देव ! मेरी भूमि खेती के लिए ली गई थी।

– ओह, तो तुमने इतने दिन कष्ट में बिताये, आज उसका मूल्य माँगने आई हो, क्यों ? अच्छा–अच्छा तुम्हें मिलेगा। प्रतिहारी!

– नहीं महाराज, मुझे मूल्य नहीं चाहिए।

– मूर्ख ! फिर क्या चाहिए ?

– उतनी भूमि, दूर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की जंगली भूमि, वहीं मैं अपनी खेती करूँगी। मुझे एक सहायक मिल गया है। वह मनुष्यों से मेरी सहायता करेगा, भूमि को समतल भी बनाना होगा।

महाराज ने कहा–कृषक–बालिके ! वह बड़ी ऊबड़–खाबड़ भूमि है। तिस पर वह दुर्ग के समीप एक सैनिक महत्व रखती है।

– तो फिर निराश लौट जाऊँ?

– सिंहमित्र की कन्या ! मैं क्या करूँ, तुम्हारी यह प्रार्थना....

– देव ! जैसी आज्ञा हो!

– जाओ, तुम श्रमजीवियों को उसमें लगाओं। मैं अमात्य को आज्ञा–पत्र देने का आदेश करता हूँ।

– जय हो देव ! कहकर प्रणाम करती हुई मधूलिका राजमन्दिर के बाहर आई। दुर्ग के दक्षिण, भयावने नाले के तट पर, बना जंगल है, आज मनुष्यों के पद–संचार से शून्यता भंग हो रही थी। अरुण के छिपे वे मनुष्य स्वतन्त्रता से इधर–उधर घूमते थे। झाड़ियों को काटकर पथ बन रहा था। नगर दूर था, फिर उधर यों ही कोई नहीं आता था। फिर अब तो महाराज की आज्ञा से वहाँ मधूलिका का अच्छा–सा खेत बन रहा था। तब इधर की किसको चिन्ता होती?

एक घने कुंज में अरुण और मधूलिका एक–दूसरे को हर्षित नेत्रों से देख रहे थे। संध्या हो चली थी। उस निविड़ वन में उन नवागत मनुष्यों को देखकर पक्षीगण अपने नीड़ को लौटते हुए अधिक कोलाहल कर रहे थे।

प्रसन्नता से अरुण की आँखें चमक उठीं। सूर्य की अन्तिम किरण झुरमट में घुसकर मधूलिका के कपोलों से खेलने लगी। अरुण ने कहा–चार प्रहर और, विश्वास करो, प्रभात में ही इस जीर्ण–कलेवर कोशल–राष्ट्र की राजधानी श्रावस्ती में तुम्हारा अभिषेक होगा और मगध से निर्वासित मैं एक स्वतंत्र राष्ट्र का अधिपति बनूँगा, मधूलिके !

– भयानक ! अरुण, तुम्हारा साहस देख मैं चकित हो रही हूँ। केवल सौ सैनिकों से तुम.....

– रात के तीसरे प्रहर मेरी विजय–यात्रा होगी।

– तो तुमको इस विजय पर विश्वास है?

– अवश्य, तुम अपनी झोपड़ी में यह रात बिताओ, प्रभात से तो राज–मन्दिर ही तुम्हारा लीला–निकेतन बनेगा।

मधूलिका प्रसन्न थी; किन्तु अरुण के लिए उसकी कल्याण–कामना सशंक थी। वह कभी–कभी उद्विग्न–सी होकर बालकों के समान प्रश्न कर बैठती। अरुण उसका समाधान कर देता। सहसा कोई संकेत पाकर उसने कहा–अच्छा, अन्धकार अधिक हो गया। अभी तुम्हें दूर जाना है और मुझे भी प्राण–पण से इस अभियान के प्रारम्भिक कार्यों को अर्द्धरात्रि तक पूरा कर लेना चाहिए, तब रात्रि भर के लिए विदा ! मधूलिके!

मधूलिका उठ खड़ी हुई। कँटीली झाड़ियों से उलझती हुई क्रम से, बढ़ने वाले अन्धकार में वह झोंपड़ी की ओर चली।

पथ अन्धकारमय था और मधूलिका का हृदय भी निविड़–तम से घिरा था। उसका मन सहसा विचलित हो उठा, मधुरता नष्ट हो गई। जितनी सुख–कल्पना थी, वह जैसे अन्धकार में विलीन होने लगी। वह भयभीत थी; पहला भय उसे अरुण के लिए उत्पन्न हुआ, यदि वह सफल न हुआ तो? फिर सहसा सोचने लगी–वह क्यों सफल हो? श्रावस्ती दुर्ग एक विदेशी के अधिकार में क्यों चला जाय? मगध का चिरशत्रु! ओह, उसकी विजय ! कोशल–नरेश ने क्या कहा था– 'सिंहमित्र की कन्या। सिंहमित्र, कोशल का रक्षक वीर, उसी की कन्या आज क्या

Scanned by CamScanner

करने जा रही है? नहीं, नहीं, मधूलिका! मधूलिका !!' जैसे उसके पिता उस अन्धकार में पुकार रहे थे। वह पगली की तरह चिल्ला उठी। रास्ता भूल गई।

रात एक पहर बीत चली, पर मधूलिका अपनी झोपड़ी तक न पहुँची। वह उधेड़बुन में विक्षिप्त–सी चली जा रही थी। उसकी आँखों के सामने कभी सिंहमित्र और कभी अरुण की मूर्ति अन्धकार में चित्रित होती जाती। उसे सामने आलोक दिखाई पड़ा। वह बीच पथ में खड़ी हो गई। प्रायः एक सौ उल्काधारी अश्वारोही चले आ रहे थे और आगे–आगे एक वीर अधेड़ सैनिक था। उसके बायें हाथ में अश्व की बल्गा और दाहिने हाथ में नग्न खड्ग। अत्यन्त वीरता से वह टुकड़ी अपने पथ पर चल रही थी। परन्तु मधूलिका बीच पथ से हिली नहीं। प्रमुख सैनिक पास आ गया; पर मधूलिका अब भी नहीं हटी। सैनिक ने अश्व रोककर कहा–कौन ? कोई उत्तर नहीं मिला। तब तक दूसरे अश्वारोही ने कड़ककर कहा–तू कौन हैं, स्त्री? कोशल के सेनापति को उत्तर शीघ्र दे।

रमणी जैसे विकार–ग्रस्त स्वर में चिल्ला उठी–बाँध लो, मुझे बाँध लो, ! मेरी हत्या करो। मैंने अपराध ही ऐसा किया है।

सेनापति हँस पड़े, बोले–पगली है।

– पगली नहीं, यदि वही होती, तो इतनी विचार–वेदना क्यों होती? सेनापति! मुझे बाँध लो। राजा के पास ले चलो।

– क्या, स्पष्ट कह!

– श्रावस्ती का दुर्ग एक प्रहर में दस्युओं के हस्तगत हो जायेगा। दक्षिणी नाले के पार उनका आक्रमण होगा।

सेनापति चौंक उठे। उन्होंने आश्चर्य से पूछा–तू क्या कह रही है?

– मैं सत्य कह रही हूँ ; शीघ्रता करो।

सेनापति ने अस्सी सैनिकों को नाले की ओर धीरे–धीरे बढ़ने की आज्ञा दी और स्वयं बीस अश्वारोहियों के साथ दूर्ग की ओर बढ़े। मधूलिका एक अश्वारोही के साथ बाँध दी गई।

श्रावस्ती का दुर्ग, कोशल राष्ट्र का केन्द्र, इस रात्रि में अपने विगत वैभव का स्वप्न देख रहा था। भिन्न राजवंशों ने उसके प्रान्तों पर अधिकार जमा लिया है। अब वह केवल कई गाँवों का अधिपति है। फिर भी उसके साथ कोशल के अतीत की स्वर्ण–गाथाएँ लिपटी हैं। वही लोगों की ईर्ष्या का कारण है। जब घोड़े से अश्वारोही बड़े वेग से आते हुए दुर्ग–द्वार पर रूके, तब दुर्ग के प्रहरी चौंक उठे। उल्का के आलोक में उन्होंने सेनापति को पहचाना, द्वार खुला। सेनापति घोड़े की पीठ से उतरे। उन्होंने कहा–अग्निसेन ! दुर्ग में कितने सैनिक होंगे?

– सेनापति की जय हो ! दो सौ।

– उन्हें शीघ्र ही एकत्र करो; परन्तु बिना किसी शब्द के। सौ को लेकर तुम शीघ्र ही चुपचाप दुर्ग के दक्षिण की ओर चलो। आलोक और शब्द न हों।

सेनापति ने मधूलिका की ओर देखा। वह खोल दी गई। उसे अपने पीछे आने का संकेत कर सेनापति राजमंदिर की ओर बढ़े। प्रतिहारी ने सेनापति को देखते ही महाराज को सावधान किया। वह अपनी सुख–निद्रा के लिए प्रस्तुत हो रहे थे, किन्तु सेनापति और साथ में मधूलिका को देखते ही चंचल हो उठे। सेनापति ने कहा–जय हो देव ! इस स्त्री के कारण मुझे इस समय उपस्थित होना पड़ा है।

महाराज ने स्थिर नेत्रों से देखकर कहा–सिंहमित्र की कन्या ! फिर यहाँ क्यों ? क्या तुम्हारा क्षेत्र नहीं बन रहा है ? कोई बाधा ? सेनापति ! मैंने दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की भूमि इसे दी है। क्या उसी सम्बन्ध में तुम कहना चाहते हो ?

– देव ! किसी गुप्त शत्रु ने उसी ओर से आज की रात में दुर्ग पर अधिकार कर लेने का प्रबन्ध किया है और इसी स्त्री ने मुझे पथ में यह सन्देश दिया है।

राजा ने मधूलिका की ओर देखा। वह काँप उठी। घृणा और लज्जा से वह गड़ी जा रही थी। राजा ने पूछा– मधूलिका, यह सत्य है!

– हाँ, देव !

राजा ने सेनापति से कहा–सैनिकों को एकत्र करके तुम चलो ! मैं अभी आता हूँ। सेनापति के चले जाने पर राजा ने कहा–सिंहमित्र की कन्या ! तुमने एक बार फिर कोशल का उपकार किया। यह सूचना देकर पुरस्कार का काम किया है। अच्छा, तुम यहीं ठहरो। पहले उनका प्रबन्ध कर लूँ।

अपने साहसिक अभियान में अरुण बन्दी हुआ और दुर्ग उल्का के आलोक में अतिरंजित हो गया। भीड़ ने जयघोष किया। सबके मन में उल्लास था। श्रावस्ती दुर्ग आज एक दस्यु के हाथ में जाने से बच गया था। अबला–वृद्ध–नारी आनन्द से उन्मत्त हो उठे।

उषा के आलोक में सभा–मण्डप दर्शकों से भर गया। बन्दी अरुण को देखते ही जनता ने रोष से हुंकार भरते हुए कहा, 'वध करो!' राजा ने सबसे सहमत होकर आज्ञा दी 'प्राण–दण्ड।' मधूलिका बुलाई गई। वह पागल–सी आकर खड़ी हो गई। कोशल–नरेश ने पूछा–मधूलिका, तुझे जो पुरस्कार लेना हो, माँग। वह चुप रही।

राजा ने कहा–मेरी निज की जितनी खेती है, मैं सब तुझे देता हूँ। मधूलिका ने एक बार बन्दी अरुण की ओर देखा। उसने कहा– मुझे कुछ न चाहिए। – अरुण हँस पड़ा। राजा ने कहा– नहीं, मैं तुझे अवश्य दूँगा। माँग ले।

– तो मुझे भी प्राणदण्ड मिले। कहती वह बन्दी अरुण के पास आ खड़ी हुई।

Scanned by CamScanner

जैनेंद्र कुमार

मनोवैज्ञानिक कथाकार के रूप में चर्चित जैनेंद्र कुमार का जन्म सन् 2 जनवरी 1905 में कौड़िया गंज जिला अलीगढ उत्तर प्रदेश में हुआ। उनका बचपन का नाम आनंदीलाल था। जैनेंद्र के मामा ने हस्तिनापुर में गुरुकुल की स्थापना की थी इसमें जैनेंद्र की प्रारम्भिक शिक्षा हुई। 1919 में दसवीं की परीक्षा पंजाब से उत्तीर्ण हुए और उच्च शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से प्राप्त की। जैनेंद्र ने व्यापार किया उसमें सफलता भी मिली किंतु 1923 में वे नागपुर में राजनीतिक पत्रों में संवाददाता के रूप में जुड गए। स्वतंत्र चिंतक होने के कारण कहीं भी नौकरी नहीं कर सके। जीविका का आधार उन्होंने लेखनी को बनाया। गांधीजी के विचारों से प्रभावित होकर अपनी पढाई अधूरी छोड़कर असहयोग आंदोलन में कूद पड़े। प्रेमचंद युग से ही लेखन आरम्भ किया लेकिन सर्वाधिक प्रसिद्धि प्रेमचंदोत्तर युग में मिली। हिंदी कथा साहित्य में पात्रों के मानसिक संघर्ष एवं द्वंद्व के चित्रण का प्रारम्भ करने का श्रेय जैनेंद्र को ही जाता है।

उपन्यास – परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, विवर्त, सुखदा, व्यतीत, जयवर्धन तथा मुक्तिबोध।

कहानी संग्रह– फाँसी, वातायन, नीलम देश की राजकन्या, एक रात, दो चिड़ियाँ, पाजेब, जयसन्धि तथा जैनेंद्र की कहानियाँ (सात भाग)।

निबंध संग्रह – जड़ की बात, पूर्वोदय, साहित्य का श्रेय और प्रेय, मंथन, सोच विचार, काम, प्रेम और परिवार।

'खेल' कहानी बालमनोविज्ञान पर आधारित कहानी है। इस कहानी में कहानीकार ने बड़ी कुशलता एवं कलात्मकता के साथ दो बच्चों की अबोधता, परस्पर स्नेह, रूठना और फिर मान जाना आदि भावों का बड़ा मनोरम तथा बाल सुलभ चित्रण किया है। नदी के तट पर मनोहर और सुरो रानी दोनों खेल रहे हैं। इनमें से सुरो रानी मिट्टी का सुंदर सा भाड़ बनाती है, वह उस भाड़ को लेकर काल्पनिक एवं स्वर्गीय आनंद में खो गई है, तभी वहाँ मनोहर आकर अपनी लात से उसके बने–बनाए भाड़ को तोड़ देता है। एक पल में ही सुरो रानी की काल्पनिक दुनिया चूर–चूर हो जाती है। जब सुरो रानी रूठ जाती है, तो उसे प्रसन्न करने के लिए मनोहर दूसरा भाड़ बनाता है। सुरो रानी इस दूसरे भाड़ को देखकर आनंदित होती है और मनोहर की बनी भाड़ को तोड़ देती है। यहाँ कहानीकार ने बच्चों की बाल सुलभ क्रियाओं का, उनकी मानसिकता का बड़ी चतुराई के साथ चित्रण कर दो बच्चों की भाव–भंगिमाओं को पाठकों के सामने रखा है।

4

खेल

– जैनेंद्र कुमार

मौन–मुग्ध संध्या स्मित प्रकाश से हँस रही थी। उस समय गंगा निर्जन वालुकास्थल पर एक बालक और एक बालिका अपने को और सारे विश्व को भूल, गंगातट के वालू और पानी को अपना एक मात्र आत्मीय बना, उनसे खिलवाड़ कर रहे थे। प्रकृति इन निर्दोश परमात्म–खंडों को निस्तब्ध और निर्निमेष निहार रही थी। बालक कहीं से एक लकड़ी लाकर तट के जल को छटा–छट उछाल रहा था। पानी मानो चोट खाकर भी बालक से मित्रता जोड़ने के लिए विह्वल हो उछल रहा था। बालिका अपने एक पैर पर रेत जमाकर और थोप–थोपकर एक भाड़ बना रही थी।

बनाते–बनाते बालिका भाड़ से बोली, देख ठीक नहीं बना, तो मैं तुझे फोड़ दूंगी। फिर बड़े प्यार से थपका–थपकाकर उसे ठीक करने लगी। सोचती जाती थी इसके ऊपर मैं एक कुटी बनाउंगी– वह मेरी कुटी होगी। और मनोहर? ..... नहीं, वह कुटी में नहीं रहेगा, बाहर खड़ा–खड़ा भाड़ में पत्ते झोंकेगा। जब वह हार जाएगा, बहुत कहेगा, तब मैं उसे अपनी कुटी के भीतर ले लूंगी।

मनोहर उधर अपने पानी से हिल–मिलकर खेल रहा था। उसे क्या मालूम कि यहाँ अकारण ही उस पर रोष और अनुग्रह किया जा रहा है।

बालिका सोच रही थी.... मनोहर कैसा अच्छा है, पर वह दंगाई बड़ा है। हमें छेड़ता ही रहता है। अबके दंगा करेगा, तो हम उसे कुटी में साझी नहीं करेंगे। साझी होने को कहेगा, तो उससे शर्त करवा लेंगे, तब साझी करेंगे। बालिका सुरबाला सातवें वर्ष में थी। मनोहर कोई दो साल उससे बड़ा था।

बालिका को अचानक ध्यान आया.... भाड़ की छत तो गरम होगी। उस पर मनोहर रहेगा कैसे ? मैं तो रह जाऊँगी। पर मनोहर तो जलेगा। फिर से सोचा. .... उससे मैं कह दूंगी, भाई, छत बहुत तप रही है, तुम जलोगे, तुम मत जाओ। पर वह अगर नहीं माना ? मेरे पास वह बैठने को आया ही.... तो मैं कहूँगी.... भाई ठहरो, मैं ही बाहर आती हूँ।..... पर वह मेरे पास आने की जिद करेगा क्या?... जरूर करेगा ! वह बड़ा हठी है..... पर मैं उसे आने नहीं दूंगी। बेचारा तपेगा....

Scanned by CamScanner

भला कुछ ठीक है। ज्यादा कहेगा, तो मैं धक्का दे दूंगी, और कहूँगी..... अरे, जल जाएगा मूर्ख। यह सोचने पर उसे बड़ा मजा–सा आया, पर उसका मुँह सूख गया। उसे मानो सचमुच ही धक्का खाकर मनोहर के गिरने का हास्योत्पादक और करुण दृश्य सत्य की भांति प्रत्यक्ष हो गया।

बालिका ने दो–एक पक्के हाथ भाड़ पर लगाकर देखा–भाड़ अब बिलकुल बन गया है। मां जिस सतर्क सावधानी के साथ अपने नवजात शिशु को बिछौने पर लेटाने को छोड़ती है, वैसे ही सुरबाला ने अपना पैर धीरे–धीरे भाड़ के नीचे से खींच लिया। इस क्रिया में वह सचमुच भाड़ को पुचकारती–सी जाती थी। उसके पांव ही पर तो भाड़ टिका है, उसी का आश्रय हट जाने पर बेचारा कहीं टूट न पड़े पैर साफ निकालने पर भाड़ जब ज्यों का त्यों टिका रहा, तब बालिका एक बार आह्लाद से नाच उठी।

बालिका एकबारगी ही बेवकूफ मनोहर को इस अलौकिक चातुर्य से परिपूर्ण भाड़ के दर्शन के लिए दौड़कर खींच लाने को उद्यत हो गई । मूर्ख लड़का पानी से उलझ रहा है, यहां कैसी जबरदस्त कारगुजारी हुई है– सो नहीं देखता। ऐसा पक्का भाड़ उसने कहीं देखा भी है।

पर सोचा–अभी नहीं; पहले कुटी तो बना लूं । यह सोचकर बालिका ने रेत की एक चुटकी ली और बड़े धीरे से भाड़ के सिर पर छोड़ दी। फिर दूसरी, फिर तीसरी, फिर चौथी। इस प्रकार चार चुटकी रेत धीरे–धीरे छोड़कर सुरबाला ने भाड़ के सिर पर अपनी कुटी तैयार कर ली।

भाड़ तैयार हो गया। पर पड़ोस का भाड़ जब बालिका ने पूरा–पूरा याद किया, तो पता चला, एक कमी रह गई। धुआँ कहाँ से निकलेगा ? तनिक सोचकर उसने एक सींक टेढ़ी करके उसमें गाड़ दी। बस, ब्रह्मांड का सबसे संपूर्ण भाड़ और विश्व की सबसे सुंदर वस्तु तैयार हो गई।

वह उस उजड्ड मनोहर को इस अपूर्व कारीगरी का दर्शन कराएगी, फ अभी जरा थोड़ा देख तो और ले। सुरबाला मुँह बाए, आँखें स्थिर करके इस भांड–श्रेष्ठ को देख–कर विस्मित और पुलकित होने लगी। परमात्मा कहं विराजते हैं, कोई इस बाला से पूछे, तो वह बताए इस भाड़ के जादू में।

मनोहर अपनी 'सुरी–सुरी–सुरी की याद कर, पानी से नाता तोड़, हाथ की लकड़ी को भरपूर जोर से गंगा की धारा में फेंककर जब मुड़ा, तब सुर सुरबाला देवी एकटक अपनी परमात्मलीला के जादू को बूझने और सुलझाने लगी हुई थी।

मनोहर ने बाला की दृष्टि का अनुसरण कर देखा.... श्रीमती–जी बिलकु अपने भाड़ में अटकी हुई हैं। उसने जोर से कहकहा लगाकर एक लात में भा का काम तमाम कर दिया।

न जाने क्या किला फतह किया हो, ऐसे गर्व से भरकर निर्दयी मनोहर चिल्लाया..... सुर्री रानी।

सुर्री रानी मूक खड़ी थी। उनके मुँह पर जहाँ अभी परम विशुद्ध रस था, वहाँ एक शून्य फैल गया। रानी के सामने एक स्वर्ग आ खड़ा हुआ था। वह उन्हीं के हाथों का बनाया हुआ था और वह एक व्यक्ति को अपने साथ लेकर उस स्वर्ग की एक–एक मनोरमता और स्वर्गीयता को दिखलाना चाहती थी। हा, हंत। वही व्यक्ति आया और उसने अपनी लात से उसे तोड़–फोड़ डाला। रानी हमारी बड़ी व्यथा से भर गई।

हमारे विद्वान पाठकों में से कोई होता, तो उन मूर्खों को समझाता.... यह संसार क्षणभंगुर है। इसमें दुःख क्या और सुख क्या। जो जिससे बनाया गया है वह उसी में लय हो जाता है.... इसमें शोक और उद्वेग की क्या बात है ? यह संसार जल का बुदबुदा है। फूट कर किसी रोज जल में ही मिल जाएगा। फूट जाने में ही बुदबुदे की सार्थकता है। जो यह नहीं समझते, वे दया के पात्र हैं। री, मूर्ख लड़की, तू समझ। सब ब्रह्मांड ब्रह्म का है, और उसी में लीन हो जाएगा। इससे तू किसलिए व्यर्थ व्यथा सह रही है ? रेत का तेरा भाड़ क्षणिक था, क्षण में लुप्त हो गया, रेत में मिल गया। इस पर खेद मत कर इससे शिक्षा ले। जिसने लात मारकर तोड़ा है वह तो परमात्मा का केवल साधन मात्र है। परमात्मा तुझे नवीन शिक्षा देना चाहते हैं। लड़की तू मूर्ख क्यों बनती है ? परमात्मा की इस शिक्षा को समझ और परमात्मा तक पहुँचने का प्रयास कर। आदि–आदि।

पर बेचारी बालिका का–दुर्भाग्य, कोई विज्ञ धीमान पंडित तत्वोपदेश के लिए गंगा तट पर नहीं पहुँच सका। हमें यह भी संदेह है कि सुर्री एकदम इतनी जड़–मूर्खा है कि यदि कोई परोपकार–रत पंडित परमात्म–निर्देश से वहाँ पहुँचकर उपदेश देने भी लगते तो वह उनकी बात को नहीं सुनती और न समझती। पर, अब तो वहाँ निर्बुद्धि शठ मनोहर के सिवा कोई नहीं है, और मनोहर विश्व–तत्व की एक भी बात नहीं जानता। उसका मन न जाने कैसा हो रहा है। कोई जैसे उसे भीतर–ही–भीतर मसोले डालता रहा है। लेकिन उसने बनकर कहा, ''सुर्री, दुत्त पगली। रूठती है ?" सुरबाला वैसे ही खड़ी रही।

"सुर्री, रूठती क्यों है ?"

बाला तनिक न हिली।

"सुरी। सुरी। ..... ओ, सुरी।"

अब बनना न हो सका। मनोहर की आवाज़ हठात् कँपी–सी निकली।

सुरबाला अब और मुँह फेरकर खड़ी हो गई। स्वर के इस कंपन का सामना शायद उससे न हो सका।

"सुरी और सुरीया। मैं मनोहर हूँ मनोहर। मुझे मारती नहीं।"

Scanned by CamScanner

यह मनोहर ने उसके पीठ पीछे से कहा और ऐसे कहा, जैसे वह ये प्रकट करना चाहता है कि वह रो नहीं रहा है।

"हम नहीं बोलते।" बालिका से बिना बोले रहा न गया। उसका भाड़ शायद स्वर्गविलीन हो गया। उसका स्थान और बाला की सारी दुनिया का स्थान काँपती हुई मनोहर की आवाज़ ने ले लिया।

मनोहर ने बड़ा बल लगाकर कहा, ''सुरी, मनोहर तेरे पीछे खड़ा है। वह बड़ा दुष्ट है। बोल मत, पर उस पर रेत क्यों नहीं फेंक देती, मार क्यों नहीं देती। उसे एक थप्पड़ लगा– वह अब कभी कसूर नहीं करेगा।"

बाला ने कड़ककर कहा, "चुप रहो जी।"

"चुप रहता हूँ, पर मुझे देखोगी भी नहीं ?"

"नहीं देखते।"

"अच्छा मत, देखो। मत ही देखो। मैं अब कभी सामने न आऊँगा, मैं इसी लायक हूँ।"

"कह दिया तुमसे, तुम चुप रहो। हम नहीं बोलते।"

बालिका में व्यथा और क्रोध कभी का खत्म हो चुका था। वह तो पिघलकर बह चुका था। यह कुछ और ही भाव था। यह एक उल्लास था जो ब्याज–कोप का रूप धर बैठा था। दूसरे शब्दों में यह स्त्रीत्व था।

मनोहर बोला, "लो सुरी, मैं नहीं बोलता। में बैठ जाता हूँ। यहीं बैठा रहूँगा। तुम जब तक न कहोगी, न उठूँगा न बोलूँगा।"

मनोहर चुप बैठ गया। कुछ क्षण बाद हारकर सुरबाला बोली..... "हमारा भाड़ क्यों तोड़ा ? हमारा भाड़ बना के दो।"

"लो अभी लो।"

"हम वैसा ही लेंगे।"

''वैसा ही लो, उससे भी अच्छा।"

उसपै हमारी कुटी थी, उसपै धुएँ का रास्ता था।"

"लो, सब लो। तुम बताती जाओ, मैं बनाता जाऊँ।"

"हम नहीं बताएँगे। तुमने क्यों तोड़ा ? तुमने तोड़ा, तुम्हीं बनाओ।"

"अच्छा, पर तुम इधर देखो तो।"

"हम नहीं देखते, पहले भाड़ बना के दो।"

''मनोहर ने एक भाड़ बनाकर तैयार किया। कहा, "लो, भाड़ बन गया।"

"बन गया ?"

"धुएँ का रास्ता बनाया ? कुटी बनाई ?"

"सो कैसे बनाऊँ ..... बताओ तो।"

"पहले बनाओ, तब बताऊँगी।"

भाड़ के सिर पर एक सींक लगाकर और एक–एक पत्ते की ओट लगाकर कहा, "बना दिया।"

तुरंत मुड़कर सुरबाला ने कहा, "अच्छा दिखाओ।"

"सींक ठीक नहीं लगी जी" "पत्ता ऐसे लगेगा" आदि–आदि संशोधन कर चुकने पर मनोहर को हुकुम हुआ.....

"थोड़ा पानी लाओ, भाड़ के सिर पर डालेंगे।"

मनोहर पानी लाया।

गंगाजल से कर–पात्रों द्वारा वह भाड़ का अभिषेक करना ही चाहता था कि सुरो रानी ने एक लात से भाड़ के सिर को चकना चूर कर दिया।

सुरबाला रानी हँसी से नाच उठी। मनोहर उत्फुल्लता से कह–कहा लगाने लगा। उस निर्जन प्रांत में वह निर्मल शिशु हास्य–रव लहरें लेता हुआ व्याप्त हो गया। सूरज महाराज बालकों जैसे लाल–लाल मुँह से गुलाबी–गुलाबी हँसी हँस रहे थे। गंगा मानो जान–बूझकर किलकारियाँ भर भर रही थी। और....और व लंबे ऊँचे–ऊँचे दिग्गज पेड़ दार्शनिक पंडितों की भाँति, सब हास्य की सार–शून्यता पर मानो मन–ही–मन गंभीर तत्वावलोचन कर, हँसी में भूले हुए मूर्खों पर थोड़ी दया बखाना चाह रहे थे।

Scanned by CamScanner

मोहन राकेश

मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी, 1925 में अमृतसर (पंजाब) में हुआ। उनका वास्तविक नाम मदन मोहन गुगलानी है, बाद में उन्होंने स्वयं अपना नाम बदलकर मोहन राकेश कर लिया। मोहन राकेश के पिता कर्मचंद गुगलानी पेशे से वकील थे। मोहन राकेश ने लाहौर से संस्कृत में एम. ए. और चंढ़ीगढ़ विश्वविद्यालय से एम. ए. हिंदी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। मुम्बई के एल्फिस्टन कॉलेज में अध्यापक का कार्य किया और जालंधर के डी. ए. वी. कॉलेज में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। 1962 में 'सारिका' पत्रिका का सम्पादन कार्य किया। हिंदी साहित्य में आप नाटककार, कथाकार और संपादक के रूप में प्रसिद्ध हैं। मोहन राकेश का निधन 3 दिसम्बर, 1972 में हुआ।

रचनाएँ – अँधेरे बंद कमरे, अंतराल, न आने वाला कल (उपन्यास), आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, आधे–अधूरे, पैर तले की ज़मीन (नाटक), शाकुंतल, मृच्छकटिक (अनूदित नाटक), अंडे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि नाटक (एकांकी), एक और जिंदगी (1961), पहचान, वारिस, एक घटना, (कहानी–संग्रह), बकलम खुद, परिवेश (निबन्ध), आखिरी चट्टान तक (यात्रावृत्त); बिना हाड़–मांस के आदमी (बालोपयोगी कहानी–संग्रह) तथा मोहन राकेश रचनावली 13 खंड। **पुरस्कार** : सर्वश्रेष्ठ नाटक और सर्वश्रेष्ठ नाटककार के रूप में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, नेहरू फेलोशिप, आदि पुरस्कारों से आपको सम्मानित किया गया। आप फिल्म सेंसर बोर्ड के सदस्य भी रहे।

'मलवे का मालिक' कहानी देश–विभाजन की त्रासदी के साथ–साथ विभाजन के साढ़े सात वर्षों में आए मानसिक परिवर्तन को व्यक्त करती है। यह कहानी धर्म, जाति, स्वार्थ, द्वेष और लालसा से ऊपर उठकर मनुष्य को मानवता का उपदेश देती है।

विभाजन के साढ़े सात वर्षों के बाद मुसलमानों की एक टोली हॉकी मैच देखने के लिए लाहौर से अमृतसर आती है, जिनमें वृद्ध गनी मियाँ भी एक थे। गनी मियाँ की इच्छा होती है कि विभाजन पूर्व अपने उस मकान को देखें, जिसे विभाजन से पहले ही छोड़कर वह पाकिस्तान गया था। वहीं से उसे अपने मकान की जलने की और बेटे चिराग, उसकी बीवी जुबेदा, तथा दोनों लड़कियाँ किश्वर और सुल्ताना के मारे जाने की खबर मिली थी। परंतु वह यह नहीं जानता थ

कि जिस रक्खे पहलवान पर उसका और उसके बेटे का अटूट विश्वास था, उसी रक्खे पहलवान ने विश्वासघात से चिराग और उसकी बीवी बच्चों की हत्या की थी।

वृद्ध गनी मियाँ अपने घर के मलबे को देख कर रोते हैं, साथ–ही–साथ रक्खे पहलवान पर विश्वास जताते हुए उसके प्रति सहानुभूति भी व्यक्त करते हैं। मलबे पर अपनी जागीर समझने वाले रक्खे पहलवान को आश्चर्य इस बात का होता है कि गनी मियाँ के मन में तो अपने घर के मलबे के प्रति जरा भी मोह नहीं है। पहलवान का मन परिवर्तित हो जाता है, उसे अपने किए पर घृणा आने लगती है। गनी मियाँ के इस कथन से कि, "जो होना था, हो गया रक्खिआ ! उसे अब कोई लौटा थोड़े ही सकता है ! खुदा नेक की नेकी बनाए रखें और बद की बदी माफ करें !" यह इस बात का संकेत देता है कि मनुष्य कुछ भी करे दुनिया में उसे अपने कर्मों का फल मिलता ही है। कहानी के अंत में रक्खे पहलवान को कुत्ता मानो उसकी चेतना बनकर उसे उस मलबे से हटा देता है, जिसे लालसा और स्वार्थवश वह अपनी जागीर समझता था। यह मोहभंग की कहानी है, जिसमें एक ओर गनी मियाँ का मोहभंग होता है, तो दूसरी ओर रक्खे पहलवान का।

Scanned by CamScanner

5

मलबे का मालिक

— मोहन राकेश

साढ़े सात साल के बाद वे लोग लाहौर से अमृतसर आये थे। हॉकी का मैच देखने का तो बहाना ही था, उन्हें ज्यादा चाव उन घरों और बाजारों को फिर से देखने का था जो साढ़े सात साल पहले उनके लिए पराये हो गये थे। हर सड़क पर मुसलमानों की कोई–न–कोई टोली घूमती नज़र आ जाती थी। उनकी आँखें इस आग्रह के साथ वहाँ की हर चीज़ को देख रही थीं, जैसे वह शहर साधारण शहर न होकर एक अच्छा–खासा आकर्षण केंद्र हो।

तंग बाजारों में से गुजरते हुए वे एक–दूसरे को पुरानी चीजों की याद दिला रहे थे.... देख–फतहदीना, मिसरी बाजार में अब मिसरी की दुकाने पहले से कितनी कम रह गयी हैं ! उस नुक्कड़ पर सुक्खी भठियारिन की भट्ठी थी, जहाँ अब वह पान वाला बैठा है।..... यह नमक मंडी देख लो, खान साहब ! यहाँ की एक–एक लालाइन वह नमकीन होती है कि बस.....!

बहुत दिनों के बाद बाजारों में तुर्रेदार पगड़ियाँ और लाल तुरकी टोपियाँ नज़र आ रही थीं। लाहौर से आये हुए मुसलमानों में काफी संख्या ऐसे लोगों की थी जिन्हें विभाजन के समय मज़बूर होकर अमृतसर से जाना पड़ा था। साढ़े सात साल में आये अनिवार्य परिवर्तनों को देखकर कहीं उनकी आँखों में हैरानी भर जाती और कहीं अफसोस घिर आता– वल्लाह ! कटरा जयमलसिंह इतना चौड़ा कैसे हो गया ? क्या इस तरफ के सब–के–सब मकान जल गये?... यहाँ हकीम आसिफ अली की दुकान थी न ? अब यहाँ एक मोची ने कब्जा कर रखा है ?

और कहीं–कहीं ऐसे भी वाक्य सुनायी दे जाते– वली, यह मस्जिद ज्यों की त्यों खड़ी है ? इन लोगों ने इसका गुरुद्वारा नहीं बना दिया!

जिस रास्ते से भी पाकिस्तानियों की टोली गुज़रती, शहर के लोग उत्सुकतापूर्वक उस तरफ देखते रहते। कुछ लोग अब भी मुसलमानों को आते देखकर आशंकित से रास्ते से हट जाते, जबकि दूसरे आगे बढ़कर उनसे बगलगीर होने लगते। ज़्यादातर वे आगंतुकों से ऐसे–ऐसे सवाल पूछते– कि आजकल लाहौर का क्या हाल है? अनारकली में अब पहले जितनी रौनक होती है या नहीं?

सुना है, शाहालमीगेट का बाज़ार पूरा नया बना है? कृष्णनगर में तो कोई ख़ास तब्दीली नहीं आयी ? वहाँ का रिश्वतपुरा क्या वाकई रिश्वत के पैसे से बना है?..... कहते हैं, पाकिस्तान में अब बुर्का बिल्कुल उड़ गया है, यह ठीक है?... इन सवालों में इतनी आत्मीयता झलकती थी कि लगता था, लाहौर एक शहर नहीं, हज़ारों लोगों का सगा–संबंधी है, जिसके हाल जानने के लिए वे उत्सुक हैं। लाहौर से आये लोग उस दिन शहर–भर के मेहमान थे जिनसे मिलकर और बातें करके लोगों को बहुत खुशी हो रही थी।

बाज़ार बाँसा अमृतसर का एक उजड़ा–सा बाज़ार है, जहाँ विभाजन से पहले ज़्यादातर निचले तबके के मुसलमान रहते थे। वहाँ ज़्यादातर बाँसों और शहतीरों की ही दुकानें थीं जो सब की सब एक ही आग में जल गयी थीं। बाज़ार बाँसाँ की वह आग अमृतसर की सबसे भयानक आग थी जिससे कुछ देर के लिए तो सारे शहर के जल जाने का अंदेशा पैदा हो गया था। बाज़ार बाँसाँ के आसपास के कई मुहल्लों को तो उस आग ने अपनी लपेट में ले ही लिया था। खैर, किसी तरह वह आग काबू में आ गयी थी, पर उसमें मुसलमानों के एक–एक घर के साथ हिन्दुओं के भी चार–चार, छः–छः घर जलकर राख हो गये थे। अब साढ़े सात साल में उनमें से कई इमारतें फिर से खड़ी हो गयी थीं, मगर जगह–जगह मलबे के ढेर अब भी मौजूद थे। नयी इमारतों के बीच–बीच में मलबे के ढेर अजीब वातावरण प्रस्तुत करते थे।

बाज़ार बाँसाँ में उस दिन भी चहल–पहल नहीं थी क्योंकि उस बाज़ार के रहने वाले ज़्यादातर लोग तो अपने मकानों के साथ ही शहीद हो गये थे और जो बचकर चले गये थे, उनमें से शायद किसी में भी लौटकर आने की हिम्मत नहीं रही थी। सिर्फ एक दुबला–पतला बुड्ढ़ा मुसलमान ही उस दिन वीरान बाज़ार में आया और वहाँ की नयी और जली हुई इमारतों को देखकर जैसे भूलभुलैया में पड़ गया। बायें तरफ जाने वाली गली के पास पहुँचकर उसके पैर अंदर मुड़ने को हुए, मगर फिर वह हिचकिचाकर वहाँ बाहर ही खड़ा रह गया। जैसे उसे विश्वास नहीं हुआ कि वह वही गली है जिसमें वह जाना चाहता है। गली में एक तरफ कुछ बच्चे कीड़ी–काड़ा खेल रहे थे और कुछ फासले पर दो स्त्रियाँ ऊँची आवाज में चीखती हुई एक–दूसरी को गालियाँ दे रही थीं।

"सब कुछ बदल गया, मगर बोलियाँ नहीं बदलीं।" बुड्ढ़े मुसलमान ने धीमे स्वर में अपने से कहा और छड़ी का सहारा लिये खड़ा रहा। उसके घुटने पाजामें से बाहर निकल रहे थे। घुटनों से थोड़ा ऊपर शेरवानी में तीन–चार पैबंद लगे थे। गली से एक बच्चा रोता हुआ बाहर आ रहा था। उसने उसे पुचकारा, "इधर आ, बेटे ! आ, तुझे चिज्जी देंगे, आ !" और वह अपनी जेब में हाथ डालकर उसे देने के लिए कोई चीज़ ढूंढने लगा। बच्चा एक क्षण के लिए चुप कर गया, लेकिन फिर उसी तरह होंठ बिसूरकर रोने लगा। एक सोलह–सत्रह साल की

Scanned by CamScanner

लड़की गली के अंदर से दौड़ती हुई आयी और बच्चे को बांह से पकड़कर गली में ले चली। बच्चा रोने के साथ–साथ अब अपनी बांह छुड़ाने के लिए मचलने लगा। लड़की ने उसे अपनी बांहों में उठाकर साथ सटा लिया और उसका मुँह चूमती हुई बोली, चुपकर, खसम–खाने ! रोयेगा, तो वह मुसलमान तुझे पकड़कर ले जायेगा ! कह रही हूँ, चुपकर !''

बुड्ढे मुसलमान ने बच्चे को देने के लिए जो पैसा निकाला था, वह उसने वापस जेब में रख लिया। सिर से टोपी उतारकर वहाँ थोड़ा खुजलाया और टोपी अपनी बगल में दबा ली। उसका गला खुश्क हो रहा था और घुटने थोड़ा कांप रहे थे। उसने गली के बाहर की एक बंद दुकान के तख्ते का सहारा ले लिया और टोपी फिर से सिर पर लगा ली। गली के सामने जहाँ पहले ऊँचे–ऊँचे शहतीर रखे रहते थे, वहाँ अब एक तिमंजिला मकान खड़ा था। सामने बिजली के तार पर दो मोटी–मोटी चीलें बिलकुल जड़–सी बैठी थी। बिजली के खंभे के पास थोड़ी धूप थी। वह कई पल धूप में उड़ते हुए जर्रो को देखता रहा। फिर उसके मुँह से निकला, ''या मालिक !''

एक नवयुवक चाबियों का गुच्छा घूमाता हुआ गली की तरफ आया। बुड्ढे को वहाँ खड़े देखकर उसने पूछा, ''कहिए मियाँजी, यहाँ किसलिए खड़े हैं ?''

बुड्ढे मुसलमान को छाती और बांहों में हलकी–सी कंपकपी महसूस हुई। उसने होठों पर जबान फेरी और नवयुवक को ध्यान से देखते हुए कहा, ''बेटे, तेरा नाम मनोरी है न ?''

नवयुवक ने चाबियों के गुच्छे को हिलाना बंद करके अपनी मुट्ठी में ले लिया और कुछ आश्चर्य के साथ पूछा, ''आपको मेरा नाम कैसे मालूम है?''

''साढ़े सात साल पहले तू इतना–सा था,'' कहकर बुड्ढे ने मुस्कराने की कोशिश की।

''आप आज पाकिस्तान से आये हैं?''

''हाँ ! पहले हम इसी गली में रहते थे,'' बुड्ढे ने कहा, ''मेरा लड़का चिरागदीन तुम लोगों का दर्जी था। तकसीम से छः महीने पहले हम लोगों ने यहाँ अपना नया मकान बनवाया था।''

''ओ, गनी मियां'' मनोरी ने पहचानकर कहा।

''हाँ, बेटे, मैं तुम लोगों का गनी मियां हूँ। चिराग और उसके बीवी–बच्चे तो अब मुझे मिल नहीं सकते, मगर मैंने सोचा कि एक बार मकान की ही सूरत देख लू !'' बुड्ढे ने टोपी उतारकर सिर पर हाथ फेरा, और अपने आँसुओं को बहने से रोक लिया।

''तुम तो शायद काफी पहले यहाँ से चले गये थे,'' मनोरी के स्वर में संवेदना भर आयी।

''हाँ, बेटे यह मेरी बदबख्ती थी कि मैं अकेला पहले निकलकर चला गया था। यहाँ रहता, तो उनके साथ मैं भी.....'' कहते हुए उसे अहसास हो आया कि यह बात उसे नहीं कहनी चाहिए। उसने बात को मुँह में रोक लिया पर आँखों में आये आँसुओं को नीचे बह जाने दिया।

''छोड़ो गनीमियाँ, अब उन बातों को सोचने में क्या रखा है ?'' मनोरी ने गनी की बांह अपने हाथ में ले ली। ''चलो, तुम्हें तुम्हारा घर दिखा दूँ।''

गली में खबर इस तरह फैली थी कि गली के बाहर एक मुसलमान खड़ा है, जो रामदासी के लड़के को उठाने जा रहा था..... उसकी बहन वक्त पर उसे पकड़ लायी, नहीं तो वह मुसलमान उसे ले गया होता। यह खबर मिलते ही जो स्त्रियां गली में पीढ़े बिछाकर बैठी थीं, वे पीढ़े उठा कर घरों के अन्दर चली गयीं। गली में खेलते बच्चों को उन्होंने पुकार–पुकारकर घरों के अन्दर बुला लिया। मनोरी गनी को लेकर गली में दाखिल हुआ, तो गली में सिर्फ एक फेरीवाला रह गया था, या रक्खा पहलवान जो कुएँ पर उगे पीपल के नीचे बिखरकर सोया था। हाँ, घरों की खिड़कियों में से और किवाड़ों के पीछे से कई चेहरे गली में झाँक रहे थे। मनोरी के साथ गनी को आते देखकर उनमें हल्की चेहमेगोइयाँ शुरू हो गयीं। दाढ़ी के सब बाल सफेद हो जाने के बावजूद चिरागदीन के बाप अब्दुल गनी को पहचानने में लोगों को दिक्कत नहीं हुई।

''वह था तुम्हारा मकान,'' मनोरी ने दूर से एक मलबे की तरफ इशारा किया। गनी पल–भर ठिठकर फटी–फटी आँखों से उस तरफ देखता रह। चिराग और उसके बीवी–बच्चों की मौत को वह काफी पहले स्वीकार कर चुका था। मगर अपने नए मकान को इस शक्ल में देखकर उसे जो झुरझुरी हुई, उसके लिए वह तैयार नहीं था। उसकी जबान पहले से और खुश्क हो गयी और घुटने भी ज्यादा काँपने लगे।

''यह मलबा ?'' उसने अविश्वास के साथ पूछ लिया।

मनोरी ने उसके चेहरे के बदले हुए रंग को देखा। उसकी बांह को थोड़ा और सहारा देकर जड़–स्वर में उत्तर दिया, ''तुम्हारा मकान उन्हीं दिनों जल गया था।''

गनी छड़ी के सहारे चलता हुआ किसी तरह मलबे के पास पहुँच गया। मलबे में अब मिट्टी ही मिट्टी थी, जिसमें से जहाँ–तहाँ टूटी और जली हुई ईटें बाहर झाँक रही थीं। लोहे और लकड़ी का सामान उसमें से कब का निकाल जा चुका था। केवल एक जले हुए दरवाजे का चौखट न जाने कैसे बचा रह गया था। पीछे की तरफ दो जली हुई अलमारियाँ थीं जिनकी कालिख पर अब सफेदी की हल्की–हल्की तह उभर आयी थी। उस मलबे को पास से देखकर गनी ने कहा, ''यह बाकी रह गया है, यह ?'' और उसके घुटने जैसे जवाब दे गये और वह वहीं जले हुए चौखट को पकड़ कर बैठ गया। क्षण–भर बाद उसका सिर भी चौखट

Scanned by CamScanner

से जा सटा और उसके मुँह से बिलखने की–सी आवाज निकली, "हाय ओय चिरागदीना!"

जले हुए किवाड़ का वह चौखट मलबे में से सिर निकाले साढ़े सात साल खड़ा तो रहा था, पर उसकी लकड़ी बुरी तरह भुरभुरा गयी थी। गनी के सिर के छूने से उसके कई रेशे झड़कर आसपास बिखर गये। कुछ रेशे गनी की टोपी और बालों पर आ रहे। उन रेशों के साथ एक कैंचुआ भी नीचे गिरा, जो गनी के पैर से छह–आठ इंच दूर नाली के साथ–साथ बनी ईंटों की पटरी पर इधर–उधर सरसराने लगा। वह छिपने के लिए सूराख ढूंढता हुआ जरा–सा सिर उठाता, पर कोई जगह न पाकर दो–एक बार सिर पटकने के बाद दूसरी तरफ मुड़ जाता।

खिड़कियों में से झाँकने वाले चेहरों की संख्या अब पहले से कहीं ज़्यादा हो गयी थी। उनमें चेहमेगोइयां चल रही थीं कि आज कुछ–न–कुछ जरूर होगा. ..... चिरागदीन का बाप गनी आ गया है, इसलिए साढ़े सात साल पहले की वह सारी घटना आज अपने–आप खुल जाएगी। लोगों को लग रहा था जैसे वह मलबा ही गनी को सारी कहानी सुना देगा– कि शाम के वक्त चिराग ऊपर के कमरे में खाना खा रहा था जब रक्खे पहलवान ने उसे नीचे बुलाया– कहा कि वह एक मिनट आकर उसकी बात सुन ले। पहलवान उन दिनों गली का बादशाह था। वहाँ के हिंदुओं पर ही उसका काफी दबदबा था– चिराग तो खैर मुसलमान था। चिराग हाथ का कौर बीच में ही छोड़कर नीचे उतर आया। उसकी बीवी जुबैदा और दोनों लड़कियां, किश्वर और सुलताना, खिड़कियों में से नीचे झाँकने लगीं। चिराग ने ड्योढ़ी से बाहर कदम रखा ही था कि पहलवान ने उसे कमीज के कालर से पकड़कर अपनी तरफ खींच लिया और गली में गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठा। चिराग उसका छुरेवाला हाथ पकड़कर चिल्लाया, "रक्खे पहलवान, मुझे मत मार ! हाय, कोई मुझे बचाओ !" ऊपर से जुबैदा, किश्वर और सुलताना भी हताश स्वर में चिल्लाई और चीखती हुई नीचे ड्योढ़ी की तरफ दौड़ी। रक्खे के एक शागिर्द ने चिराग की जद्दोजहद करती बाहें पकड़ लीं और रक्खा उसकी जांघों को अपने घुटनों से दबाये हुए बोला, "चीखता क्यों है, भैण के... तुझे मैं पाकिस्तान दे रहा हूँ, ले पाकिस्तान !" और जब तक जुबैदा, किश्वर और सुलताना नीचे पहुँची, चिराग को पाकिस्तान मिल चुका था।

आसपास के घरों की खिड़कियाँ तब बंद हो गयीं थीं। जो लोग इस दृश्य के साक्षी थे, उन्होंने दरवाजे बंद करके अपने को इस घटना के उत्तरदायित्व से मुक्त कर लिया था। बंद किवाड़ों में भी उन्हें देर तक जुबैदा, किश्वर और सुलताना के चीखने की आवाजें सुनायी देती रहीं। रक्खे पहलवान और उसके साथियों ने उन्हें भी उसी रात पाकिस्तान दे दिया, मगर दूसरे तबील रास्ते से। उनकी लाशें चिराग के घर में न मिलकर बाद में नहर के पानी में पायी गयीं।

दो दिन चिराग के घर की छानबीन होती रही थी। जब उसका सारा

सामान लूटा जा चुका, तो न जाने किसने उस घर को आग लगा दी थी। रक्खे पहलवान ने तब कसम खाई थी कि वह आग लगाने वाले को जिन्दा जमीन में गाड़ देगा क्योंकि उस मकान पर नज़र रख कर ही उसने चिराग को मारने का निश्चय किया था। उसने उस मकान को शुद्ध करने के लिए हवन–सामग्री भी ला रखी थी। मगर आग लगाने वाले का तब से आज तक पता नहीं चल सका था। अब साढ़े सात साल से रक्खा उस मलबे को अपनी जायदाद समझता आ रहा था, जहाँ न वह किसी को गाय–भैंस बाँधने देता था और न ही खुमचा लगाने देता था। उस मलबे से बिना उसकी इजाजत के कोई एक ईंट भी नहीं निकाल सकता था।

लोग आशा कर रहे थे कि यह सारी कहानी जरूर किसी न किसी तरह गनी तक पहुँच जाएगी..... जैसे मलबे को देखकर ही उसे सारी घटना का पता चल जाएगा। और गनी मलबे की मिट्टी को नाखूनों से खोद–खोद कर अपने ऊपर डाल रहा था और दरवाजे के चौखट को बाँह में लिये हुए रो रहा था, "बोल, चिरागदीना बोल! तू कहाँ चला गया, ओए ? ओ किश्वर! ओ सुलताना! हाय, मेरे बच्चे ओएऽऽ! गनी को पीछे क्यों छोड़ दिया, ओएऽऽऽ!"

और भुरभुरे किवाड़ से लकड़ी के रेशे झड़ते जा रहे थे।

पीपल के नीचे सोए रक्खे पहलवान को जाने किसी ने जगा दिया, या वह खुद ही जाग गया। यह जानकर कि पाकिस्तान से अब्दुल गनी आया है और अपने मकान के मलबे पर बैठा है, उसके गले में थोड़ा झाग उठ आया, जिससे उसे खाँसी आ गयी और उसने कुँए के फर्श पर थूक दिया। मलबे की तरफ देखकर उसकी छाती से धौंकनी की–सी आवाज निकली और उसका निचला होंठ थोड़ा बाहर को फैल आया।

"गनी अपने मलबे पर बैठा है," उसके शागिर्द लच्छे पहलवान ने उसके पास आकर बैठते हुए कहा।

"मलबा उसका कैसे है? मलबा हमारा है ?" पहलवान ने झाग से घरघराई आवाज में कहा।

"मगर वह वहाँ पर बैठा है," लच्छे ने आंखों में रहस्यमय संकेत लाकर कहा।

"बैठा है, बैठा रहे। तू चिलम ला !" रक्खे की टांगें थोड़ी फैल गयीं और उसने अपनी नंगी जांघों पर हाथ फेर लिया।

"मनोरी ने अगर उसे कुछ बता–बता दिया तो...?" लच्छे ने चिलम भरने के लिए उठते हुए उसी रहस्यपूर्ण ढंग से कहा।

"मनोरी की क्या शामत आयी है ?"

लच्छे चला गया।

कुँए पर पीपल की कई पुरानी पत्तियां बिखरी थीं। रक्खा उन पत्तियों

Scanned by CamScanner

को उठा–उठाकर अपने हाथों में मसलता रहा। जब लच्छे ने चिलम के नीचे कपड़ा लगाकर चिलम उसके हाथ में दी, तो उसने कश खींचते हुए पूछा, "और तो किसी से गनी की बात नहीं हुई ?"

"ले," और उसने खांसते हुए चिलम लच्छे के हाथ में दे दी। मनोरी गनी की बांह पकड़े मलबे की तरफ से आ रहा था। लच्छा उकड़ूँ होकर चिलम के लम्बे–लम्बे कश खींचने लगा। उसकी आंखें आधा क्षण रक्खे के चेहरे पर टिकतीं और आधा क्षण गनी की तरफ लगी रहतीं।

मनोरी गनी की बांह थामे उससे एक कदम आगे चल रहा था– जैसे उसकी कोशिश हो कि गनी कुंए के पास से बिना रक्खे को देखे ही निकल जाय। मगर रक्खा जिस तरह बिखरकर बैठा था, उससे गनी ने उसे दूर से ही देख लिया। कुएँ के पास पहुँचते न पहुँचते उसकी दोनों बाहें फैल गयीं और उसने कहा, "रक्खे पहलवान!"

रक्खे ने गर्दन उठाकर और आंखें जरा छोटी करके उसे देखा। उसके गले में अस्पष्ट–सी घरघराहट हुई, पर वह बोला नहीं।

"रक्खे पहलवान, मुझे पहचाना नहीं ?" गनी ने बाहें नीची करके कहा, "मैं गनी हूँ, अब्दुल गनी, चिरागदीन का बाप!"

पहलवान ने ऊपर से नीचे तक उसका जायजा लिया। अब्दुल गनी की आंखों में उसे देखकर एक चमक–सी आ गयी थी। सफेद दाढ़ी के नीचे उसके चेहरे की झुरियाँ भी कुछ फैल गयी थीं। रक्खे का निचला होंठ फड़का। फिर उसकी छाती से भारी–सा स्वर निकला, "सुना गनिया!"

गनी की बांहें फिर फैलने को हुई, पर पहलवान पर कोई प्रतिक्रिया न देखकर उसी तरह रह गयी। वह पीपल का सहरा लेकर कुएँ की सिल पर बैठ गया।

ऊपर खिड़कियों में चेहमेगोइयां तेज हो गयीं कि अब दोनों आमने–सामने आ गए हैं, तो बात जरूर खुलेगी..... फिर हो सकता है दोनों में गाली–गलौज भी हो।.... अब रक्खा गनी को हाथ नहीं लगा सकता। अब वे दिन नहीं रहे।..... बड़ा मलबे का मालिक बनता था !..... असल में मलबा न इसका है, न गनी का। मलबा तो सरकार की मलकियत है ! मरदूद किसी को वहाँ गाय का खूँटा तक नहीं लगाने देता !..... मनोरी भी डरपोक है। इसने गनी को बताया क्यों नहीं दिया कि रक्खे ने ही चिराग और उसके बीवी–बच्चों को मारा है !.... रक्खा आदमी नहीं सांड़ है ! दिन भर सांड़ की तरह गली में घूमता है !..... गनी बेचारा कितना दुबला हो गया है ! दाढ़ी के सारे बाल सफेद हो गये हैं !.....

गनी ने कुएं की सिल पर बैठकर कहा, "देख रक्खे पहलवान, क्या से क्या हो गया ! भरा–पूरा घर छोड़कर गया था और आज यहां यह मिट्टी देखने आया हूँ ! वसे घर की आज यही निशानी रह गयी है ! तू सच पूछे तो मेरा यह

मिट्टी भी छोड़कर जाने को मन नहीं करता !" और उसकी आंखें फिर छलछला आयी।

पहलवान ने अपनी टांगें समेट लीं और अंगोछा कुएं की मुंडेर से उठाकर कंधे पर डाल लिया। लच्छे ने चिलम उसकी तरफ बढ़ा दी। वह कश खींचने लगा।

"तू बता, रक्खे, यह सब हुआ किस तरह ?" गनी किसी तरह अपने आँसू रोककर बोला, "तुम लोग उसके पास थे। सबमें भाई–भाई की–सी मुहब्बत थी। अगर वह चाहता, तो तुममें से किसी के घर में नहीं छिप सकता था ? उसमें इतनी भी समझदारी नहीं थी.?"

"ऐसा ही है," रक्खें को स्वयं लगा कि उसकी आवाज में एक अस्वाभाविक–सी गूँज है। उसके होंठ गाढ़े लार से चिपक गये थे। मूँछों के नीचे से पसीना उसके होंठ पर आ रहा था। उसे माथे पर किसी चीज का दबाव महसूस हो रहा था और उसकी रीढ़ की हड्डी सहारा चाह रही थी।

"पाकिस्तान में तुम लोगों के क्या हाल हैं ?" उसने पूछा। उसके गले की नसों में एक तनाव आ गया था। उसने अंगोछे से बगलों का पसीना पोंछा और गले का झाग मुँह में खींच कर गली में थूक दिया।

"क्या हाल बताऊँ, रक्खे," गनी दोनों हाथों से छड़ी पर बोझ डालकर झुकता हुआ बोला, "मेरा हाल तो मेरा खुदा ही जानता है। चिराग वहाँ साथ होता, तो और बात थी।..... मैंने उसे कितना समझाया था कि मेरे साथ चला चल। पर वह जिद पर अड़ा रहा कि नया मकान छोड़कर नही जाऊँगा– यह अपनी गली है, यहाँ कोई खतरा नहीं है। भोले कबूतर ने यह नहीं सोचा कि गली में खतरा न हो, पर बाहर से तो खतरा आ सकता है ! मकान की रखवाली के लिए चारों ने अपनी जान दे दी !..... रक्खे, उसे तेरा बहुत भरोसा था। कहता था कि रक्खे के रहते मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मगर जब जान पर बन आई, तो रक्खे के रोके भी न रूकी।"

रक्खे ने सीधा होने की चेष्टा की क्योंकि उसकी रीढ़ की हड्डी बहुत दर्द कर रही थी। अपनी कमर और जांघों के जोड़ पर उसे सख्त दबाव महसूस हो रहा था। पेट की अंतड़ियों के पास से जैसे कोई चीज उसकी साँस रोक रही थी। उसका सारा जिस्म पसीने से भीग गया था और उसके तलुवों में चुनचुनाहट हो रही थी। बीच–बीच में नीली फुलझड़ियाँ–सी ऊपर से उतरतीं और तैरती हुई उसकी आँखों के सामने से निकल जातीं। उसे अपनी जबान और होंठों के बीच एक फासला–सा महसूस हो रहा था। उसने अंगोछे से होंठों के कोनों को साफ किया। साथ ही उसके मुँह से निकला, "हे प्रभु, तू ही है, तू ही है, तू! ही है !"

गनी ने देखा कि पहलवान के होंठ सूख रहे हैं और उसकी आँखों के इर्द–गिर्द दायरे गहरे हो गये हैं। वह उसके कंधे पर हाथ रखकर बोला, "जो होना

Scanned by CamScanner

था, हो गया रक्खिआ ! उसे अब कोई लौटा थोड़े ही सकता है ! खुदा नेक की नेकी बनाये रखे और बद की बदी माफ करें ! मैंने आकर तुम लोगों को देख लिया, सो समझूँगा कि चिराग को देख लिया। अल्लाह तुम्हें सेहतमंद रखे !" और वह छड़ी के सहारे उठ खड़ा हुआ। चलते हुए उसने कहा, "अच्छा रक्खे, पहलवान!"

रक्खे के गले से मद्धिम–सी आवाज निकली। अंगोछा लिये हुए उसके दोनों हाथ जुड़ गये। गनी हसरत–भरी नजर से आस–पास देखता हुआ धीरे–धीरे गली से बाहर चला गया।

ऊपर खिड़कियों में थोड़ी देर चेहमेगोइयां चलती रहीं– कि मनोरी ने गली से बाहर निकलकर जरूर गनी को सब कुछ बता दिया होगा। कि गनी के सामने रक्खे का तालू कैसे खुश्क हो गया था !..... रक्खा अब किस मुँह से लोगों को..... मलबे पर गाय बांधने से रोकेगा ? बेचारी जुबैदा! कितनी अच्छी थी वह रक्खे मरदूद का घर..... न घाट, इसे किसी की माँ–बहन का लिहाज था?

और थोड़ी में स्त्रियां घरों से गली में उतर आयीं। बच्चे गली में गुल्ली–डण्डा खेलने लगे। दो बारह–तेरह साल की लड़कियां किसी बात पर एक–दूसरी से गुत्थम–गुत्था हो गयीं।

रक्खा गहरी शाम तक कुएं पर बैठ खंखरता और चिलम फूँकता रहा। कई लोगों ने वहाँ गुजरते हुए उससे पूछा, "रक्खे शाह, सुना है आज गनी पाकिस्तान से आया था ?"

"हाँ, आया था," रक्खे ने हर बार एक ही उत्तर दिया।

"फिर ?"

"फिर कुछ नहीं। चला गया।"

रात होने पर रक्खा रोज की तरह गली के बाहर बाईं तरफ की दुकान के तख्ते पर आ बैठा। रोज वह रास्ते से गुजरने वाले परिचित लोगों को आवाज़ दे–देकर पास बुला लेता था और उन्हें सट्टे के गुर और सेहत के नुस्खे बताता रहता था। मगर उस दिन वह वहाँ बैठा लच्छे को अपनी वैष्नों देवी की उस यात्रा का वर्णन सुनाता रहा जो उसने पन्द्रह साल पहले की थी। लच्छे को भेजकर वह गली में आया, तो मलबे के पास लोकू पंडित की भैंस को देखकर वह आदत के मुताबिक उसे धक्के दे–दे कर हटाने लगा, "तत – तत – तत..... तत–तत.... !"

भैंस को हटाकर वह सुस्ताने के लिए मलबे के चौखट पर बैठ गया। गली उस समय सुनसान थी। कमेटी की बत्ती न होने से वहाँ शाम से ही अंधेरा हो जाता था। मलबे के नीचे नाली का पानी हल्की आवाज़ करता वह रहा था। रात की खामोशी को टकराती हुई कई तरह की हल्की–हल्की आवाजें मलबे की मिट्टी में से सुनाई दे रहीं थीं..... च्यु – च्यु – च्यु..... चिक् – चिक् – चिक्..... किर्र्र्र – र्र्र्र – रीरीरीरी – चिर्र्र्र्र.....। एक भटका हुआ कौआ न जाने कहाँ से उड़कर उस चौखट पर आ बैठा। इससे लकड़ी के कई रेशे इधर–उधर छिट

गये। कौए के वहाँ बैठते न बैठते मलबे के एक कोने में लेटा हुआ कुत्ता गुर्राकर उठा और जोर–जोर से भौंकने लगा– वऊ – अऊ – वउ ! कौआ कुछ देर सहमा–सा चौखट पर बैठा रहा, फिर पंख फड़फड़ाता कुएँ के पीपल पर चला गया। कौए के उड़ जानेपर कुत्ता और नीचे उतर आया और पहलवान की तरफ मुँह करके भौंकने लगा। पहलवान उसे हटाने के लिए भारी आवाज में बोला, "दुर् दुर्दुर्.....दुरे !" मगर कुत्ता और पास आकर भौंकने लगा– वऊ–अऊ–वउ–वउ–वउ–वउ.....।

पहलवान ने एक ढेला उठाकर कुत्ते की तरफ फेंका। कुत्ता थोड़ा पीछे हट गया। पर उसका भौंकना बंद नहीं हुआ। पहलवान कुत्ते की माँ को गाली देकर वहाँ से उठ खड़ा हुआ और धीरे–धीरे जाकर कुएँ की सिल पर लेट गया। उसके वहाँ से हटते ही कुत्ता गली में उतर आया ओर कुएँ की तरफ मुँह करके भौंकने लगा। काफी देर भौंकने के बाद जब उसे गली में कोई प्राणी चलता–फिरता नज़र नहीं आया, तो वह एक बार कान झटककर मलबे पर लौट गया और वहाँ कोने में बैठकर गुर्राने लगा।

Scanned by CamScanner

चित्रा मुद्गल

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा साहित्यकारों में चर्चित लेखिका चित्रा मुद्गल जी का जन्म 10 दिसंबर 1944 को चेन्नई में हुआ। उन्होंने मुंबई के सोमैया कॉलेज से इण्टरमीडिएट किया और एम. ए. हिंदी एस. एन. डी. टी. विश्वविद्यालय से किया। उनके दादा ठाकुर बजरंग सिंह उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के निहालगढ़ खेड़ा नामक गाँव के जमींदार थे। चित्रा मुद्गल के पिता का नाम ठाकुर प्रताप सिंह और माता का नाम विमला देवी था। पिताजी शिकार के शौकीन थे, वह पूरी तरह से सामंती संस्कार के व्यक्ति थे, तो माता सीधी–सादी घरेलू महिला थी। चित्रा जी का विवाह हिंदी साहित्यकार अवध नारायण मुद्गल के साथ 17 फरवरी 1965 में हुआ। अवध नारायण ब्राह्मण थे, तो चित्रा जी ठाकुर। अतः चित्रा जी के परिवार वालों को यह अंतरजातीय विवाह मंजूर नहीं था। बावजूद इसके चित्रा जी ने अवध नारायण के साथ विवाह किया।

चित्रा जी के व्यक्तित्व पर गोरकी, टॉलस्टॉय, प्रेमचंद, रवींद्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी आदि के विचारों का प्रभाव दिखाई देता है। उन्होंने अपनी गहरी जनसंवेदनाओं को अपने कथा साहित्य में पूरी ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त किया है। चित्रा जी ने अपने साहित्य लेखन की यात्रा सन् 1964 से आरम्भ की। उनकी पहली कहानी 'सफेद अनार' नवरत्न टाइम्स में 25 अक्टूबर 1964 को प्रकाशित हुई। तब से उन्होंने निरंतर कहानी, उपन्यास, कविता, बाल साहित्य आदि विविध विधाओं पर लेखन कर हिंदी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

चित्रा जी ने अपनी कहानियों में सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है। जीवन का यथार्थ उनकी कहानियों में झलकता है। नारी के विविध रूपों का चित्रण, मानव चेतना और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति उनकी कहानियों की विशेषताएँ हैं।

उपन्यास – 'एक जमीन अपनी' (1990), 'आवाँ' (2000), 'गिल्ली गड्डू' (2003) आदि।

कहानी संग्रह – 'जहर ठहरा हुआ' (1980), 'लाक्षागृह' (1982), 'अपनी वापसी' (1983), 'इस हमाम में' (1986), 'ग्यारह लंबी कहानियाँ' (1987), 'जगदंबा बाबू गाँव आ रहे हैं' (1992), 'चर्चित कहानियाँ' (1994), 'मामला आगे बढ़ेगा अभी' (1994), 'जिनावर' (1996), 'केंचुल' (2001), 'भूख' (2001), 'लपटें' (2003), 'चर्चित

कहानियाँ' (2004), 'बयान' (2004), 'आदि–अनादि' (2007)।

नाटक– पंच परमेश्वर तथा अन्य नाटक, सद्गति तथा अन्य नाटक, बूढ़ी काकी तथा अन्य नाटक।

सम्मान – उपन्यास आवाँ को बिड़ला फांउडेशन का व्यास सम्मान से सम्मानित किया गया। इसके अतिरिक्त उनके साहित्य लेखन के लिए पुश्किन सम्मान (रूस), इंदु शर्मा कथा सम्मान (लंदन), साहित्य सम्मान (हिंदी अकादमी, दिल्ली), अवंतीबाई सम्मान, साहित्य भूषण सम्मान, और वीरसिंहदेव सम्मान आदि सम्मानों से आपको सम्मानित किया गया है।

'गेंद' कहानी 'लपटें' कहानी संग्रह से ली गई है। यह कहानी वर्तमान समय में वृद्धों के प्रति बढ़ती संवेदनहीनता को व्यक्त करती है। भौतिकता के प्रभाव से आज परिवार में वृद्धों के प्रति उपेक्षा का भाव कैसे बढ़ते जा रहा है। परिणामस्वरूप वृद्धाश्रम बढ़ते जा रहे हैं। कहानी में नौकरी से रिटायर्ड सचदेवा एक वृद्ध पिता है, जिनका पुत्र विनय इंग्लैंड चला गया और वही शादी कर बस गया। पिता के अंतिम वर्ष ठीक से बीते इसलिए उसने पिता की व्यवस्था वृद्धाश्रम में तो कर दी लेकिन पारिवारिक स्नेह और भावनिक साहचर्य के बारे में उसने नहीं सोचा। सचदेवा आर्थिक व्यथा से ज्यादा मानसिक तथा भावात्मक साहचर्य के अभाव से पीड़ित है। इस अभाव की पूर्ति वे एक बच्चे के साहचर्य से करते हैं। बच्चे की मां डॉक्टर है लेकिन पति से अलग रहती है। डिस्पेंसरी जाते समय वह बच्चे को घर में बंद कर देती है, ताकि वह आस–पास के बच्चों के संपर्क से बिगड़ न जाए। एक दिन बंद मकान की कंपाउंड के अंदर से बच्चा अपनी खोई हुई गेंद खोजने की प्रार्थना जब सचदेवा से करता है तब बच्चे से सारी बातें सुनकर सचदेवा अपनी तुलना उस बच्चे से करते हैं। दोनों समदुखियाँ हैं इसलिए दोनों अटूट बंधन में बंध जाते हैं। लेखिका यहाँ बताना चाहती है कि पारिवारिक स्नेह और भावात्मक साहचर्य की गेंद इस आधुनिक परिवेश के मैदान में न जाने कहाँ गुम हो गई है, जिसे ढूँढ़ने का प्रयास हर एक को करना पड़ रहा है।

Scanned by CamScanner

6

गेंद

— चित्रा मुद्गल

"अंकल...ओ अंकल! ... प्लीज सुनिए न अंकल...!

सँकरी सड़क से लगभग सटे बँगले की फेंसिंग के उस ओर से किसी बच्चे ने उन्हें पुकारा।

सचदेवा जी ठिठके, आवाज कहाँ से आयी भाँपने लगे। कुछ समझ नहीं पाये। कानों और गंजे सिर को ढके कसकर लपेटे हुए मफलर को उन्होंने तनिक ढीला किया। मधुमेह का सीधा आक्रमण उनकी श्रवण–शक्ति पर हुआ है। अकसर मन चोट खा जाता है जब उनके न सुनने पर सामने वाला व्यक्ति अपनी खीज को संयत स्वर के बावजूद दबा नहीं पाता। सात–आठ महीने से ऊपर हो रहे होंगे। विनय को अपनी परेशानी लिख भेजी थी उन्होंने। जवाब में उसने फोन खटका दिया। श्रवण–यंत्र के लिए वह उनके नाम रुपये भेज रहा है। आश्रम वालों की सहायता से अपना इलाज करवा लें। बड़े दिनों तक वे अपने नाम आनेवाले रुपयों का इन्तजार करते रहे। गुस्से में आकर उन्होंने उसे एक और खत लिखा। जवाब में उसका एक और फोन आया। एक पेंचीदे काम में उलझा हुआ था। इसीलिए उन्हें रुपये नहीं भेज पाया। अगले महीने हैरो के एक भारतीय मित्र आ रहे हैं। घर उनका लाजपत नगर में है। फोन नम्बर लिख लें उनके घर का। उनके हाथों पौण्डस् भेज रहा हूँ। नाम है उनका डॉ मनीष कुशवाहा! महीना शुरू होते ही उन्होंने उनके घर फोन करना शुरू कर दिया। तीसरी दफे पता लगा कि वे सोलह तारीख की रात आ रहे हैं। उनके फोन करने से पहले डॉ मनीष कुशवाहा का फोन आ गया। रामेश्वर ने सूचना दी तो वे उमग कर फोन सुनने पहुँचे। मनीष कुशवाहा ने बड़ी आत्मीयता से उनका हाल–चाल पूछा। जानना चाहा, क्या–क्या तकलीफें हैं उन्हें। शुगर कितना है? ब्लड प्रेशर के लिए कौन–सी गोली ले रहे हैं? पेशाब में यूरिया की जाँच करवाई? करवा लें। क्यों अकेले रह रहे हैं वहाँ? विनय के पास लन्दन क्यों नहीं चले जाते ? उनकी बीवी...यानी उनकी बहू तो स्वयं डॉक्टर है...! रुपयों की कोई बात ही नहीं शुरू हुई। झिझकते हुए उन्होंने खुद ही पूछ लिया, "बेटा, विनय ने तुम्हारे हाथों इलाज के लिए कुछ रुपये भेजने को कहा था।"

मनीष को सहसा स्मरण हो आया – "कहा तो था विनय ने, आश्रम का फोन नम्बर लिख लो, बाबूजी के लिए कुछ रुपये भिजवाने हैं... मगर मेरे निकलन तक... दरअसल, मुझे भी अति व्यस्तता में समय नहीं मिला कि मैं उसे याद दिला देता..."

विनय को चिट्ठी लिखने बैठे तो काँपनेवाले हाथ गुस्से से कुछ अधिक ही थर्राने लगे। अक्षर पढ़ने लायक हो पाएँ तभी न अपनी बात कह पाएँगे! तय किया। फोन पर खरी–खोटी सुना कर ही चैन लेंगे। फोन पर मिली मारग्रेट। बोली कि वह उनकी बात समझ नहीं पा रही। विनय घर पर नहीं है। मैनचेस्टर गया हुआ है। मारग्रेट के सर्वथा असम्बन्धित भाव ने उन्हें क्षुब्ध कर दिया। छलनी हो उठे। बहू के बात–बर्ताव का कोई तरीका है यह? फोन लगभग पटक दिया उन्होंने। कुछ और हो नहीं सकता था। क्रोध में वे सिर्फ हिन्दी बोल पाते हैं या पंजाबी। मारग्रेट उनकी अँग्रेजी नहीं समझती, तो हिन्दी, पंजाबी कैसे समझेगी? पोती सुवीना से बातें न कर पाने का मलाल हफ्तों कोंचता रहा। हालाँकि बातें तो वह उस गुड़िया की भी नहीं समझते।

ढीले किए गये मफलर में ठण्डी हवा सुरसुराती धँसी चली आ रही। ढीठ!

नवम्बर के किनारे लगते दिन हैं। ठण्ड की अवाती सभी को सोहती है। उन्हें बिलकुल नहीं। साँझ असमय सिन्दूरी होने लगती। धुँधलका डग नहीं भरता। छलाँग भर बेलज्ज अँधेरे की बांह में डूब लेता है। आश्रम से सैर को निकले नहीं कि पलटने की खदबद मचने लगती।

मफलर कस कर लपेट आगे बढ़े, ताकि 'मदर डेयरी' तक पहुँचने का नियम पूरा हो ले। नियम पूरा न होने से उद्विग्नता होती है। किसी ने नहीं पुकारा। कौन पुकारेगा? भ्रम हुआ है। भ्रम खूब भरमाने लगे हैं इधर। अपनी सुध में दवाई की गोलियाँ रखते हैं पलंग से सटी तिपाई पर, मिलती हैं धरी तकिए पर!

अगल–बगल मुड़कर देख लिया। न सड़क के इस पार न उस पार ही कोई दिखा। हो, तब ही न दिखे! कदम बढ़ा लिया उन्होंने। कब तक भकुआए से खड़े रहें ?

पहले वे चार–पाँच जने इकट्ठे हो शाम को टहलने निकलते। एक–एक कर वे सारे बिस्तर से लग गये। बीसेक रोज पहले तक उनका रूम–पार्टनर कपूर साथ आया करता था। अचानक उसके दोनों पाँवों में फीलपा हो गया। डॉक्टर वर्मा ने बिस्तर से उतरने की मनाही कर दी। कपूर उन्हें भी सयानी हिदायत दे रहा था कि टहलने अकेले न जाया करें। एक तो संग साथ में सैर–सूर का मजा ही कुछ और होता है। और फिर एक–दूसरे का ख्याल भी रखते चलते हैं। सावित्री बहन जी नहीं बता रही थीं मिस्टर चड्ढा का किस्सा? राह चलते अटैक आया, वहीं ढेर हो गये। तीन घण्टे बाद जाकर कहीं खबर लगी। सेहत का ख्याल करना ही है, तो आश्रम के भीतर ही आठ–दस चक्कर मार लिया करें। बूढ़ी हड्डियों को

Scanned by CamScanner

बुढ़ापा ही टँगड़ी मारता है।...

कपूर की सलाह ठीक लगकर भी अमल करने लायक नहीं लगी। उन्हें मधुमेह है। केवल गोलियों के बूते पर मोर्चा नहीं लिया जा सकता इस नरभक्षी रोग से। राजो जिन्दा थी तो उन्हें कभी अपनी फिक्र नहीं करनी पड़ी। नित नये नुस्खे घोंट–घाँट कर पिलाती रहती। करेले का रस, मेथी का पानी, जामुन की गुठली की फँकी... और न जाने क्या–क्या।

"ये ऽऽ अंकल...चा ऽऽ च, इधर पीछे देखिये न! कब से बुला रहा हूँ, फेंसिंग के पीछे हूँ मैं।"

"पीछे आइए...इधर, इधर देखिए न..."फेसिंग के पीछे से उचकता बच्चा उनकी बेध्यानी पर झुँझलाया।

हकबकाये से वे पुनः ठिठक कर पीछे मुड़े। अब की सही ठिकाने पर नजर टिकी —"ओ ऽऽ तू पुकार रहा है मुझे?" फेसिंग के उस पास से बच्चे के उचकते चेहरे ने उन्हें एक बारगी हुलास से भर दिया।

"क्यों भई, किस वास्ते...?"

उसका स्वर अनमनाया,"मेरी गेंद बाहर चली गयी है।"

"कैसे ?"

बच्चे का स्वर उनके फिजूल से प्रश्न से खीझा – "बॉलिंग कर रहा था।"

"अच्छा।... तो बाहर आकर खुद क्यों नहीं ढूँढ लेते अपनी गेंद?"

बच्चे का आशय भाँप वे मुस्कुराये।

"गेट में ताला लगा हुआ है।"

"ताला खुलवा लो मम्मी से!"

"मम्मी नर्सिंग होम गयी हैं।"

"नौकरानी तो होगी घर में कोई ?"

"बुद्धिराम गाँव गया है। घर पे मैं अकेला हूँ। मम्मी बाहर से बन्द करके गयी हैं।" बच्चे के गबदू भोले मुख पर लाचारी ने पंजा कसा।

"हुंअ, अकेले खेल रहे हो ?"

"अकेले...मम्मी किसी बच्चे के साथ खेलने नहीं देतीं।"

"भला वो क्यों ?"

"मुझे भी गुस्सा आता है, बोलती हैं – बिगड़ जाओगे। यहाँ के बच्चे जँगली हैं।"

"बड़ी गलत सोच है। खैर...। तुम्हें नर्सिंग होम साथ लेकर क्यों नहीं गयीं ?" माँ की बेवकूफी पर उन्हें गुस्सा आया। घण्टे–आध घण्टे की ही बात तो थी, बच्चे को इस तरह अकेला छोड़ता है कोई?

"मम्मी घण्टे भर में नहीं लौटेंगी अंकल, रात नौ बजे के बाद लौटेंगी।"

"इतनी देरी से...?"

"मम्मी तो डॉक्टर हैं। मेरे साथ रहने के लिए नर्सिंग होम से एक नर्स आण्टी आएँगी अभी। वही गेट खोलेंगी, पर भी खोलेंगी..."

"पहले तो, अंकल, मम्मी मुझे घर में बन्द कर जाती थी।" उनके माथे के वल चिन्ता और अविश्वास से गहराये।

"और तुम्हारे पापा कब आते हैं ?" पटर–पटर बोलने वाला बच्चा अनायास चुप्पी की खोह में उतर गया।

"नहीं हैं?" आशंकित हो उन्होंने प्रश्न किया। फिर लगा कि इतने छोटे बच्चे से उन्हें यह सवाल नहीं पूछना चाहिए था।

"हैं न !" बच्चे ने संशय–निवारण किया।

"फिर...?" उसे कुरेदने से वे स्वयं को नहीं रोक पाये।

"अलग रहते हैं।"

"मम्मी डरती हैं उनसे।"

"ओ ऽऽ ..."

"अंकल, मेरी गेंद ढूँढ़ दीजिए न !"

"तुम मुझे अंकल क्यों कह रहे हो... मैं तुम्हारे दादाजी की उम्र का हूँ। मुझे दादाजी कहो।"

बच्चा असमंजस में पड़ गया।

"बूढ़ों को दादाजी कहकर पुकारते हैं..." उन्होंने समझाया।

बच्चा लहककर बोला – "हाँ, नानाजी भी बोलते हैं!"

"दादाजी को नहीं जानते ?"

"न इ ऽऽ ..." बच्चे ने मासूमियत से मुण्डी हिलायी।

"चलो, मुझे दादाजी पुकारा करो। पुकारोगे न ?" सहसा उनका गला भर्रा आया। हैरत हुई स्वयं पर।

"पुकारूँगा... पर मेरी गेंद ढूँढकर देनी होगी आपको।"

"ढूँढ दूँगा।... पहले पुकारो !"

"दादाजी, मेरी गेंद ढूँढ दीजिए न !"

सचदेवा जी की बूढ़ी आँखों में एकाएक पैनापन आ समाया। बड़ी देर तक सड़क के किनारे की घास–फूस में बच्चे की गेंद टोहते रहे। बच्चे की हिदायत पर सड़क के उस पार भी गेंद ढूँढने की कोशिश की उन्होंने। गेंद कहीं नहीं दिखी। हताश हो वे उसके निकट आ खड़े हुए। बच्चे का चेहरा उतर गया।

"तुम यकीन के साथ कह सकते हो कि गेंद बाहर उछली थी ?"

"हाँ, उछली है।"

अचानक फेंसिंग के ऊपर उचके बच्चे का सन्तुलन गड़बड़ाया। धप्प से गिरने की आवाज़ इस ओर आयी। वे घबड़ाये। ध्यान गया। खाँसी ऊँची फेंसिंग से उचककर इतना छोटा बच्चा उनसे कैसे बतिया सकता था। निश्चय ही किसी

Scanned by CamScanner

चीज पर खड़ा हुआ होगा, "बरखुरदार, गिर कैसे गये? भई चोट तो नहीं आयी?"

"नहीं दादाजी, घास पर गिरा हूँ।"

पल भर में बच्चे का चेहरा फिर से जल की सतह पर कमल–सा खिल आया।

फौरन गिरने की सफाई दी – "आप डर गये? क्या है न दादाजी, मैं तो छोटा बच्चा हूँ न, लकड़ी के खोखे पर खड़ा हूँ।"

अच्छा! अच्छा! अब सँभलकर खड़े रहो।" यह नहीं कह सके कि ऐसे मत खड़े हुआ करो! यह भी तो लगा कि जब तक वे इस ओर खड़े रहेंगे, बच्चा खोखे पर से नीचे नहीं उतरने वाला। बोले – "यह तो तय है कि गेंद अहाते के भीतर ही गिरी है कहीं। तुम मानो या न मानो। मैं चलूँ। अँधेरा होने को है।"

"अरे नईं–नईं दादाजी, मत जाइए न! प्लीज!" बच्चे ने नन्हीं हथेलियाँ नचायीं – "गेंद गुम हो गयी, अकेले खेल भी नहीं सकता न!"

जी भड़भड़ा आया। कोई उन्हें रोकने को इतना मनुहार कर सकता है? मोटे चश्मे के पीछे आँखों में गीली धुन्ध पसर गयी। ऊपर तने अपने चेहरे को उन्होंने नीचे गिरा लिया, ताकि धुन्ध की पिघलती बाढ़ को घूँट सकें।

बच्चे को वे अनिश्चय में जकड़ने लगे।

"रुकेंगे न!"

सहमति में उन्होंने सिर हिलाया। धुँधलके में जली बत्तियाँ उन्हें चौंधियाती हैं। किरमिच के जूतों में कसे पंजों से जमीन फूंक फूंक कर साधनी होती है। मासूम को उनकी दिक्कत का क्या अँदाजा। बता कर भी क्या होगा! मानेगा ही नहीं। जिद्दी कम नहीं।

"कल भी आएँगे?"

"आऊँगा, सैर का यही रास्ता है। मगर क्यों, कल क्यों आऊँ?"

"आज तो गेंद मिली नहीं, कल ढूँढ दीजिएगा। मम्मी को नहीं बताऊँगा, गुम हो गयी।"

"देखो, तुम्हारे लिए मैं कल नयी गेंद खरीद लाऊँगा। ढूँढूंगा नहीं। बूढ़ा हो गया हूँ न, अधिक देर झुक नहीं सकता।"

"नयी गेंद? आप मुझे नयी गेंद लाकर देंगे?" अविश्वास के बावजूद बच्चे के गवदू चेहरे पर ललक कौंधी।

ललक ने उन्हें पुलकाया – "इसमें अचरज की क्या बात है। दादाजी अपने पोते को नयी गेंद नहीं खरीद कर दे सकते?"

"फिर तो, फिर तो...अच्छी वाली गेंद खरीद कर लाइएगा। वो–जैसी गेंद से कपिलदेव बॉलिंग करता है!"

"अच्छी वाली ही लाऊँगा," बड़े दिनों के बाद वे हँसे। अपनी हँसी पर विस्मित भी हुए। उन्हें तो यही लगा था कि हँसी से उनका नाता टूट चुका है।

तभी बच्चे का चेहरा फेंसिंग पर से गायब हो गया।

वे भौंचक–से कुछ कहते कि अचानक जहाज के उठते मस्तूल–सा उन्हें वैट नजर आया। अगले पल वैट अवलोकन के लिए उनकी ओर बढ़ाया गया। वे बच्चे का मनोभाव ताड़ गये।

"अच्छा तो है।"

उनका बहलाना उसे रुचा नहीं– "ये अच्छा है, अच्छा है? प्लास्टिक का है। देखिए कितना पिचक गया है।"

उनकी हँसी ने पंख फड़फड़ाये– "मतलब कि तुम्हें बैट भी नया चाहिए।"

जवाब न देकर एकाएक बच्चा चौकन्ना हुआ– "नर्स आण्टी गेट खोल रही हैं दादाजी, मैं जा रहा हूँ...आपसे कल यहीं मिलूँगा..."

उन्होंने बच्चे से नाम तो पूछा ही नहीं। अपनी नासमझी पर खीझे। तुरन्त आवाज लगायी– "साहब बहादुर, अपना नाम तो बताते जाओ!"

"मैं तो बिल्लू हूँ दादाजी, बिल्लू ऽ ऽ ऽ" खोखे पर से उतरते हुए हड़बड़ाया जवाब आया।

"पलटने में रास्ता बहुत छोटा लगा। बिल्लू रास्ते भर कुदकियाँ मारते उनके संग चलता रहा।...

बिल्लू इसी सेक्टर में रहता है। हारी बीमारी छोड़ लगभग रोज ही वे इस ओर घूमने आते हैं। पर कभी उससे भेंट का सुयोग नहीं हुआ। करिश्मा किया गेंद ने। खूब उछली। ठीक उनकी पाली में आ गिरी। पहले क्यों नहीं गिरी, इसी बात का मलाल हो रहा था। ऐसा न करें, बैट–बॉल खरीदने की बजाय बिल्लू को पूरा क्रिकेट किट ही खरीद दें? भौंचक रह जाएगा। बल्कि खूब खुश होगा।

पैसे पता नहीं कितने खर्च होंगे। होंगे सो होंगे। पेंशन वृद्धाश्रम के नाम लिख दी है उन्होंने। उसी मद में उनके रहने खाने, दवा–दारू आदि की व्यवस्था हो रही है। पिछले वर्ष से बढ़ी पेंशन ही नहीं मिल रही, जब से बढ़ी है उसकी बकाया रकम भी इकठ्ठी मिली है। अतिरिक्त मिले रुपयों में से मुश्किल से सावित्री बहन जी ने माँगने पर कुछ ढीले किये, बढ़ी महँगाई और वृद्धाश्रम के निरन्तर बढ़ रहे खर्चों का रोना रोते हुए। ट्रस्ट' की सीमाओं की ओर खुलकर इशारा किया उन्होंने। ट्रस्ट' कहाँ तक बोझ वहन करे, आर्थिक संसाधन के रास्ते मुँह सिए हुए हैं। अधिकांश बुजुर्ग ऐसे हैं जिनके घर वाले साल–डेढ़ साल नियमित खर्च भेजते रहे। अब जिम्मेदारी से मुँह मोड़ सन्नाटा खींचे बैठे हैं। वृद्धाश्रम में रहकर भी बुजुर्ग अपनी बची–खुची सम्पत्ति अन्त में अपनी उन्हीं नालायक औलादों के नाम लिख जाते हैं जिन्होंने उन्हें तिरस्कृत कर घर से बाहर कर दिया। सिद्धेश्वरी बहन जी का किस्सा भूले नहीं होंगे आप। एकमात्र मकान बच्चों के नाम लिख देने के बावजूद इसी शहर में होकर भी उनके घर वाले उनके क्रियाकर्म को सामने नहीं आये। इसी बात पर खफा थे कि उन्होंने क्यों अपनी सोने की चूड़ियाँ और गले

Scanned by CamScanner

की भारी लड़ आश्रम को दान कर दी।...

...कल जरा जल्दी सैर को निकलेंगे। रिक्शे में बैठ पहले अड्डा मार्केट जाएँगे। खेल का सामान बेचनेवाली किसी बढ़िया–सी दुकान से बिल्लू के लिए क्रिकेट किट खरीदेंगे। उस पर अपना आशीष लिखेंगे और लिखेंगे– 'बिल्लू को उसके दादाजी की ओर से।' डाक्टरनी माँ को शायद उनके उपहार पर आपत्ति हो। बिल्लू क्रिकेट किट लेने से शायद डरे। बच्चा है। उससे अपनी ललक दब नहीं पायी। जल्दी इसलिए भी निकलना चाह रहे थे कि नर्सिंग होम निकलने से पूर्व डाक्टरनी से उनकी भेंट हो जाए। डाक्टरनी चाहे जितना ना–नुकर करे, वे नहीं माननेवाले..परिचय देंगे। ऐरे–गैरे आदमी नहीं हैं वे। 'नवोदय विद्यालय' के अवकाश प्राप्त प्रधानाचार्य हैं। घर–परिवार वाले हैं।

वृद्धाश्रम के गेट में घुसते ही प्रांगण में इकट्ठी भीड़ ने उन्हें आशंकित कर दिया है। कहीं राम की प्यारी तो नहीं हो गयीं चटर्जी दी? घोर कष्ट में थीं। कल दोपहर ही तो उन्हें कैलाश अस्पताल से यह कहकर वापस भेज दिया गया था कि उनकी दोनों किडनियों ने लगभग काम करना बन्द कर दिया है। अब–तब का मामला है। उनकी इच्छा थी कि आश्रम में अपने संगी–साथियों के बीच वह आखिरी साँस लें। वही तो उनका घर–परिवार है। सावित्री बहन जी का आदेश हुआ है। रात्रि भोजन से पूर्व सभी बुजुर्ग चटर्जी दी से पंक्तिबद्ध मिलेंगे ही नहीं बल्कि डेढ़ घण्टे उनके कमरे के समक्ष बैठ भजन–कीर्तन भी करेंगे। वही भजन जिन्हें वे स्वयं मग्न हो गाया करती थीं–"गिरधर, गिरधर, गिरधर, गिरधर–मोर मुकुट वाले वंशीधर... माखन चोर, माखन चोर किशन कन्हाई तू सिमोर।" डूबकर कीर्तन हुआ। सहसा बिमला बहन जी हर्ष–विभोर हो चीख उठी थीं। आँखें खोल दी हैं चटर्जी दी ने! कुछ कहना चाह रही हैं! खड़िया पुते से मुख पर सूखे पपड़ियाए होंठ अस्फुट–सा कुछ बुदबुदा रहे थे। हो सकता है तुलसी दल और गंगाजी मुँह में टपकाने के लिए कह रही हों। साध्वी के मुँह से और क्या निकलेगा। "जाओ, दौड़ो, जल्दी गंगा जल और तुलसी दल लाओ।"

गंगा जल आने तक बिमला बहन जी ने चटर्जी दी के होंठों के पास कान रख दिये। चटर्जी दी लगातार त्याग दिये बेटे का नाम बुदबुदा रही थीं– 'श्या..मा..ल, श्या...मो..ल'

बिमला बहन जी के बताते ही सभी बुजुर्गों में चीरती अनमनाहट व्याप गयी। सरेआम चटर्जी दी कहती थीं, मरूँ तो दाह–संस्कार चाहे जिससे करवा देना, नालायक बेटे को खबर न करना...।

जुटे लोगों के निकट पहुँच तनातनी–भरे माहौल ने उन्हें अबूझ बना दिया। सावित्री बहन जी के तमतमाये चेहरे से मामला कुछ और ही लगा।

भीड़ को चीर कर सावित्री बहन जी की नजर उनकी ओर लपकी। उम्र में उनसे छोटी होने के बावजूद वे अपनी उग्रता नियंत्रित नहीं रख पायीं। आश्रम

की प्रबन्धिका होने के नाते सम्भवतः।

"अँधेरे में लौटना आपके लिए वाजिब नहीं, भाई साहब। ऊंच–नीच क्यों नहीं समझते?" अगले ही पल नौकरों के जत्थे में खड़ी सुन्दरी को उन्होंने कर्कश हो डपटा– "कमरे में पड़ी चटर्जी दी आखिरी साँसें गिन रही हैं और तू कसाई हृदय उन्हें अकेला छोड़ धरने पर आ बैठी है?... नौकरी पकड़े चार दिन हुए नहीं कि पर निकल आए तेरे?... अभी इसी वक्त निर्णय कर ले, नौकरी करनी है तुझे या नहीं..."

चेतावनी से घबड़ायी सुन्दरी फाटरन जत्थे से अलग हो भीतर की ओर मुड़ ली। कुछेक नौकरानियों ने उसकी कुहनी धर उसे रोकने की चेष्टा की, मगर कुहनी झटक कर उसने उनकी ओर मुड़कर भी नहीं देखा।

मामला पूछने पर पता चला। आश्रम के रसोइये समेत अन्य सातों नौकर–नौकरानियों ने रामेश्वर के पक्ष में धरना दे रखा है। रामेश्वर ने तेरह नम्बर वाले बूढ़े शिवदासानी जी की शिकायत की है कि उन्होंने उसके साथ अविश्वसनीय अमानवीय व्यवहाँर किया। घण्टे–भर पहले उन्होंने उससे शाम की चाय के बदले गिलास भर दूध माँगा। संग में अरारोट के तीन–चार बिस्किट। रामेश्वर ने दूध का गिलास जैसे ही उनके बिस्तर से लगी मेज पर टिकाया, अचानक शिवदासानी जी ने हिंसक हो खौलते दूध का गिलास उसके ऊपर उँडेल दिया। रामेश्वर की छाती जल गयी। रोते–चीखते उसने समूचा वृद्धाश्रम सिर पर उठा लिया–"प्राण लै लियो' निर्दयी बुड्ढे नेऽऽऽ..."

हैरान बुजुर्गों को रामेश्वर ने अपनी दूध से भीगी छाती खोल कर दिखायी। छाती जल रही है। उसकी पूरी छाती काले रोओं से भरी है। ललाई नहीं दिखाई दे सकती। दिखाई देती तो उन्हें अन्दाजा लगता शिवदासानी जी की निर्दयता का। मामला मामूली नहीं। दब नहीं सकता। ज्यादती के खिलाफ़ प्रतिवाद होगा। तत्काल सारे नौकरों ने काम से हाथ खींच लिये।

बिस्तर से लगे बुजुर्गों को टट्टी–पेशाब करानेवाला मनेसुर हाथ मटका–मटकाकर नेतई बघारने लगा– "एक तो हम कर में पाँव दिये इन बुढ़े–बुढ़ियों को माई–बाप कबूल कर तन–मन से इनकी सेवा टहल करें, ऊपर से इनका भस्मासुरी क्रोध झेलें। कोई पूछे इनसे, तुम्हारे अपने जाये तो तुम्हारा हगना–मूतना उठाने को राजी नहीं। जो उठा रहे उन्हीं को रेतने को तुम तरिया रहे? आखरि हम भी तो हाड़–मांस के मानुस ठहरे, कोई लोहा–लंगड़ के गढ़े बने तो हैं नहीं! बोलिए?"

क्षुब्ध सावित्री बहन जी ने बुजुर्गों को फटकारा– "आप लोग नौकरों को इन्सान क्यों नहीं समझते? पैसा ही सब कुछ नहीं होता। मिशन भावना न हो तो आपकी एक घण्टी पर ये अपना खाना–पानी छोड़ कर हाथ बाँधे जा खड़े न हों।"

नौकरों की पुचकार के पीछे सावित्री बहन जी की मंशा अस्पष्ट नहीं।

Scanned by CamScanner

नौकरों की पूँछ सहलाये बिना उठ खड़े हुए संकट से उबर पाना आसान नहीं।

बुजुर्गों को छोड़ वे क्षुब्ध रामेश्वर की ओर उन्मुख हुई। सिद्धहस्त अभिनेत्री–सी भावुकता ओढ़े–"मैं एक ही बात कहती हूँ रामेश्वर! शिवदासानी जी की जगह तुम्हारे पिता ने यह हरकत की होती तो उनके साथ तुम्हारा यही व्यवहार होता?"

–जाओ, डिस्पेन्सरी खुलवा कर डॉ.सब्बलवाल जी से दवा ले लो। चाहो तो घर जाकर आराम करो। तुम्हारे बदले शिवशंकर नाइट–ड्यूटी कर लेगा।" रामेश्वर के कन्धे थपथपाए उन्होंने।

"वैसे ही काफी देर हो चुकी है। जाओ, सब अपने–अपने काम पर लगो।

...और आप लोग सुनिए! कल की ही भाँति आज भी खाना खाने से पहले चटर्जी दी के लिए आप लोग कीर्तन करेंगे।

रामेश्वर की चुप्पी को अनुमति मान नौकर खिसकने लगे।

बूढ़ों की झुर्रियों में उलझी उदासी डेरा उठाने को राजी न थी।

नब्बे साल की उम्रदराज कमलेश बहन जी को सावित्री बहन जी के निहोरे जँचे नहीं। अपनी बैठी आवाज़ में वे शिवदासानी जी की पैरवी के लिए झुकी कमर से आगे आईं। जाने को उद्यत रामेश्वर को टोंका उन्होंने, "तू इतना भर बता पुत्तर! माता शेरांवाली दी सौं तुझे। दूध कितना गरम था?"

"खौलता था।"

"खौलते दूध का गिलास तू लाया कैसे?"

अनपेक्षित प्रश्न से रामेश्वर सकपकाया–"अंगौछे में लपेटकर।"

"तू गिलास अंगौछे में लपेटकर लाया और शिवदासानी भाई जी ने गिलास नंगे हाथ चुक, फौरन तेरे ऊपर उँडेल दिया?"

खिसियाया रामेश्वर बमका–"आपका मतलब मैंने झूठ बोला?"

"ना, ना पुत्तर! तू झूठ नहीं बोल रहा। बस, दूध के नीचे तूने आँच जरा ज्यादा ही बढ़ा दी।"

ठहरे हुए लोग एकबारगी हँस पड़े।

शिवदासानी जी के कमरे के सामने से गुजरते हुए सचदेवा जी अपने कमरे की ओर बढ़े कि उन्हें बिस्तर पर बेचैन बैठे पा भीतर जाकर उनसे मिल लेने को विवश हो उठे।

साँस तेज चल रही थी उनकी। दमा उखड़ रहा था। आँखों से उफनती तकलीफ ने उन्हें बिस्तर पर बैठने का संकेत किया।

पूछने पर भरे मन से बताने लगे। मना करने के बावजूद रामेश्वर खूब तंग करने लगा है इधर उन्हें। गुनगुना दूध माँगो तो फ्रिज का ठण्डा दूध सामने ला कर रख लेगा। कहो कि इसे तनिक गरमा लाओ, नुक्सान करेगा तो साफ मना कर देगा कि रसोई के चूल्हे खाली नहीं हैं। सुबह पूछके जाएगा कि नाश्ते में

दलिया खाना है या कार्नफ्लैक्स ? दलिया माँगने पर घण्टे–भर बाद आकर सूचित करेगा कि दलिया खत्म हो गया। कार्नफ्लैक्स दूध खाना चाहें तो वह ले आए।...

– अकसर ताना मारता है उन्हें कि न वे कभी तीज–त्यौहार मुट्ठी में चाँपते हैं न कुछ पकड़ाते हैं उसे, न उनके मिलवाइये, भेंटइए। बस, घण्टी बजा बजा कर सेंत–मेंत उसे गधे–सा दौड़ाते रहते हैं।

– आज वही किया उसने। माँगने पर ठण्डा दूध लाकर रख दिया। गरम करके लाने के लिए कहते ही वही पुराने टोंचते बोल दोहराने लगा। गुस्से के मारे वे आपा खो बैठे।

"ले बक्शीश..."

भीतर की खालन ने सहसा बीच रास्ते पछाड़े खा रही साँसों उसाँसों को कण्ठ में दबोच लिया। शिवदासानी जी की आँखें बाहर को आने लगीं। मेज पर धरे अस्थमा पम्प को उठा देने का संकेत किया उन्होंने। मुँह खोलकर पलों तक प्राण वायु पूरी ताकत से फेफड़ों में खींचते रहे। कुछ सामान्य हुए तो अचानक धैर्य छोड़ कर बच्चे से बिलखने लगे। पास सरक कर उन्होंने आत्मीयता से उनके कन्धे थपथपाये तो पाया, उनकी इकहरी देह कँपकपा रही है। वे मन–ही–मन शिव स्त्रोत पढ़ने लगे।

रोज रात जान–बूझकर खुले छोड़ दिये जाने वाले बाथरूम की पीली रोशनी की चौड़ी शहतीर और कपूर के नींद की गोलियों से उपजे कर्कश खर्राटे सचदेवा जी को झपकने तक नहीं दे रहे।

न, शायद वे बहाने गढ़ रहे हैं। रोशनी हमेशा ही पूरी–पूरी रात उनके पलंग से गज भर की दूरी पर जागती रहती है और कपूर के खर्राटे उन्हें इत्मीनान से भर देते हैं कि इर्द–गिर्द सब ठीक है। निश्चिन्त हो वे सो सकते हैं।

शायद अन्तस में हिलोरें ले रही कोई अधीरता है, जो उन्हें सोने नहीं दे रही।... हाँ, शायद यही सच है। वे बिल्लू के लिए बेचैन हैं। कब भोर हो। सूरज चढ़े। दोपहरी सांकल खोले और वे फटाफट अड्डा मार्केट दौड़ें ताकि उसके लिए मनपसन्द क्रिकेट किट खरीद कर उसे चमत्कृत कर दें। वह नादान तो सोचे बैठा होगा कि ज्यादा से ज्यादा दादाजी उसके लिए गेंद के साथ बैट ले आएँगे। बस...

...गोल–मटोल गप्पू से चेहरे पर छल्लेदार बाल कैसे झबरीले से हैं।

माया की धार तेज हुई। क्रिकेट किट के साथ बिल्लू के लिए कैप भी खरीदेंगे। ठीक वैसी ही, जैसी गावस्कर के बेटे रोहन गावस्कर को दूरदर्शन पर पहने देखा था।

डॉक्टरनी के लिए भी कुछ ले जाना होगा। हल्दीराम से काजू या पिस्ते की बर्फी ले लेंगे। बिल्लू खाएगा मजे से। हौंस कुलांचे भर रही थी, लेकिन इतना कुछ खरीदने के लिए रुपये हैं पास में? विनू के लिए जब बैट खरीदते थे तब

Scanned by CamScanner

मुश्किल से तीस पैंतीस का आता था। महँगाई ने तब आदमी की जेब सूँघनी भर शुरू की थी। तब उतनी ही सुँघाई भारी लगती थी। अब तो मामला सौ प्रतिशत उलट।

क्यों न अपनी अलमारी खोल समाई नाप–जोख लें? तीन अलग–अलग कोने–किनारों में रुपये चाँप रखे हैं उन्होंने। एक तो कोट की अन्दरूनी जेब में। दूसरे...अँऽऽऽ हाँ–अलमारी के बीच वाले खाने के ऊपर बिछे अखवार की तह में। तीसरे, विनू की चिट्ठियों के बीच एक बन्द लिफाफे में, पाँच –पाँच सौ के छः नोट रखे हैं। यह सावधानी जरूरी लगती है उन्हें। चार–पाँच महीने पहले की घटना होगी। सैर को निकले तो अलमारी की चाभी कमरे पर ही भूल गये। लौटे तो मनी पर्स निकाल कर टोहा। तकरीबन सात सौ रुपये पर्स से एकमुश्त नदारद मिले।

उठे, सिरहाने रखी चाभी टटोली। पूरी सावधानी के साथ बेआवाज चाभी घुमाई और अलमारी के पल्ले खोले। बाथरूम की रोशनी की हल्की उजास में ही तीनों ठिकाने टोहे। सम्पत्ति सुरक्षित मिली।

अलमारी बन्द कर शान्त भाव से बिस्तर पर करवट ले लेट गये। बिल्लू की नन्हीं गदेली कनपटी थपथपाने लगी। आँखें मुँदने लगीं।

नींद खुली तो पाया, प्रकृति के विपरीत उन्हें सुबह सवा नौ तक सोता हुआ पाकर कपूर चिन्तित हो रहा है।

उठकर बैठते ही सवाल गोली–सा छूटा, "आप तकलीफ से तो नहीं हैं?"

सवाल के जवाब में उन्होंने सवाल दागा, "एक बात बताओ कपूर, आदमी देर तक कब सोता है?"

"जब वह किसी मीठे सपने की गिरफ्त में होता है।"

"तो मैं भला चंगा हूँ–समझे।"

क्षण भर को कपूर अबूझ हो उठा। फिर अगले ही पल सहज हो बोला, "आप देर से उठे हो, फटाफट फारिग हो चाय नाश्ते से निपट लो। मैं कर चुका हूँ।"

"क्यों?"

"सावित्री बहन जी का आदेश है।"

"कोई मिनिस्टर आने वाला है आश्रम में?"

"नई भाई जी!"

"फिर कैसी हड़बड़ी?"

"हड़बड़ी है।..."

"माने...?" वे जिदियाये।

"चटर्जी दी..." कपूर का स्वर भर्राया।

"ओह!"

उनकी करुण 'ओह' खुले होंठों में स्तब्ध–सी टँग गयी और बड़ी देर तक

उनके दरमियान बच्चे–खोई बिल्ली–सी निःशब्द रुदन करती मँडराती रही।

कपूर ने अपने सहारे उन्हें भी बाहर निकलने में मदद की।

...कि सावित्री बहन जी ने चटर्जी दी के बेटे श्यामल से चण्डीगढ़ बात कर ली है। बेटे ने स्पष्ट कह दिया। जो होना है–आश्रम में ही होगा। उन्हें चण्डीगढ़ ले जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। तबादले की नौकरी ने उनकी कोई स्थायी देहरी रहने दी हो–तभी न वह माँ को घर ले जाए। बारह–एक के बीच वह आश्रम पहुँच जाएगा। दाह–संस्कार का समय निश्चित हो गया है। दोपहर अढाई बजे होगा। सावित्री बहन जी ने सख्ती से ऐलान किया है। कोई बुजुर्ग भूखा नहीं रहेगा। बारह–एक के मध्य सभी भोजन से निपट लें। अपनी दवा–दारू खा लें। एक घण्टा आराम कर लें।

कपूर ने बताया, रसोइए का मुँह फूला हुआ है। भुनभुना रहा था कि अजीब हैं सावित्री बहन जी। कभी किसी ने ऐसी अनहोनी सुनी? घर पर मुर्दा पड़ा हो और घर का चूल्हा जले? सूतक में भोजन! करेगा कौन? सावित्री बहन जी ने उसे धर डपटा–सभी करेंगे। चाय, नाश्ता, खाना सब बनेगा सामान्य दिनों की भाँति। जिसे न खाना हो–न खाए। बुजुर्गों को भूखा रखकर वे अपने लिए कोई अन्य मुसीबत खड़ी नहीं कर सकतीं।

"घण्टी बजाऊँ नाश्ते के लिए?" कपूर के स्वर में मनौवल था–"तब तक आएगा..."

"नहीं।" उन्होंने कपूर को झटकते हुए आगे नहीं बोलने दिया। रसोइये की बात गलत नहीं लग रही थी उन्हें। कपूर ने कैसे नाश्ता कर लिया? पाँच–छः घण्टे पानी पीकर भी तो गुजारे जा सकते हैं। फिर आज का दिन सामान्य दिन की तरह तो है नहीं। सावित्री बहन जी के कहने से क्या होता है। चटर्जी दी की मौत उनके लिए, निष्ठुर परिवार वाले के द्वारा सामान्य बना देने मात्र से तो सामान्य नहीं बन जाती। उनकी बिरादरी का एक जीवन्त हिस्सा गुजर गया है, जो कल तक जीता–जागता उनके साथ था। उनके सुख–दुख का सहभागी। उसे अन्तिम विदाई दिये बिना कौर दिया जा सकता है मुँह में? कितना अभिन्न मित्र है कपूर उनका। बाँह पर मच्छर बैठ जाए तो चिन्ता में दुबला होने वाला। कल आँख मुँद जाए उनकी तो इसी प्रकार खा–पीकर उनकी मृत्यु का शोक मनाएगा?

अखबार खोले बैठे कपूर की ओर उन्होंने विराग भाव से देखा। फिर मेज पर रखे जग से गिलास–भर पानी पीने लगे। उठते ही दो गिलास पानी न पिएं तो काम आगे नहीं बढ़ता। पुरानी आदत है।

उन्हें पानी पीते देख कपूर ने साभिप्राय अखबार तहाया।

"कीर्तन शुरू होने में आधा घण्टा बचा है।"

फारिग होकर कपूर के संग कीर्तन–कक्ष में आये।

फूलों से लदी चटर्जी दी को बर्फ पर लिटाने की जरूरत नहीं थी। कहीं

Scanned by CamScanner

चटर्जी दी रात को ही तो नहीं चल बसीं ?

भजन–मण्डली नीचे बैठी हुई थी। कुछ बुजुर्ग भी। मगर अधिकांश कुर्सियों पर बैठे हुए थे। नीचे बैठकर उठ पाना उनके लिए सम्भव नहीं था। उनके शोकातुर सहमे चेहरे गर्दनों पर झूलते हुए मौत के दस्तखत की प्रतीक्षा में लग रहे थे।

भजन बंगाली में चल रहा था। उनके हाथ सिर्फ ताल दे रहे थे। ढाई बजे दाह–संस्कार का मतलब है श्मशान से लौटकर नहाते–धोते साँझ हो जाएगी। सैर के लिए आज गुंजाइश निकाल पाना मुश्किल है। बिल्लू खोके पर चढ़कर फेंसिंग से उचक–उचक उनकी राह देखेगा। दादाजी आ क्यों नहीं रहे हैं।...

कपूर ने बताया था कमरे में–आश्रम की एम्बुलेंस में ले जाया जाएगा चटर्जी दी को। जो लोग शव–यात्रा में जाना चाहेंगे, उनके लिए बस मँगवाई गयी है 'समर विला' स्कूल से। ठीक दो बजे बस जा लगेगी आश्रम के भीतर। अन्तिम विदाई देने जाने की प्रबल इच्छा हो रही उसकी। समझ नहीं पा रहा कि वह बस की सीढ़ियाँ चढ़ भी पाएगा या नहीं। चटर्जी दी उसे हमेशा डाँटा करती थीं–"कपूर भाई, बुढ़ापे का मुटापा साक्षात् मौत की दावत ही है। दोनों बेला लम्बा टहलिए। साँझ को टहलाने भर से बात नहीं बनने की। कमजोर टाँगें कब तक संभालेंगी देह का बोझ।" कपूर ने आत्मालाप–सा किया था–"कोई चटर्जी दी से पूछे कि उम्र में सात बरस छोटी होकर और काया से छँटाक–क्यों चल दी हमसे पहले? विचित्र बहीखाते हैं।"

कमरे में आकर सचदेवा जी बिस्तर पर पसर गये। उचाट मन किसी ठिकाने नहीं टिक रहा।

कपूर खिचड़ी खा रहा है। केवल मूँग की खिचड़ी बनी है। खाना आज खाने के कमरे के बजाय कमरे में ही परोस कर दे गया है रामेश्वर। वैसे भी बिस्तर पर गिरे बुजुर्गों को कमरे में ही पहुँचाया जाता है। रामेश्वर लगभग उनके पीछे ही पड़ गया। खाना न खाएँ उचित ही है मगर कप भर दूध के साथ अपनी दवाइयाँ तो ले लें। दूध–पानी एक ही बात ठहरी। उनसे तमीज से ही पेश आता है रामेश्वर। दीवाली पर उपहार में दिए गये खादी के दो नये कुर्तों का खाता अब तक खुला हुआ है। चचेरी बहन आयी थी दीवाली पर खील–बताशे लेकर। उनके मैले कुर्ते ने उन्हें द्रवित कर दिया। अगले हफ्ते दो कुर्ते पहुँचा गयी। चार जोड़ी से अधिक कपड़े अब उनसे सँभलते नहीं। राजो ने उन्हें निकम्मा ही बनाया।

आँखें लगी भर थीं कि रामेश्वर की हाँक ने जगाया। बस आ लगी है आश्रम के मुहाने।

विस्मित हुए। कमरे से बाहर न निकलने वाले बुजुर्गों को बाहर निकलते देखा। जिन्हें पहले ज्यादा से ज्यादा उन्होंने कमरे की चौखट के बाहर कुर्सी पर बैठे भर देखा है।

चटर्जी दी को एम्बुलेंस में ले जाने से पहले आश्रम के प्रांगण में रखा गया। दो टोकरी गुलाब की पंखड़ियाँ बाहर से मँगाई गयी हैं। आश्रम के पेड़–पौधों ने भी उनके अन्तिम श्रृंगार में मदद की है। सहायक विष्णु बुजुर्गों को अपनी आत्मीय साथिन को अश्रु–भीगी पुष्पांजलि अर्पित करने में सहायता कर रहा था। सचदेवा जी चटर्जी दी के पुत्र श्यामल को उनके सिरहाने खड़े लोगों में ढूँढने की चेष्टा करते रहे। बंगाली समाज के बहुत से अजनबी चेहरों के बीच श्यामल का चेहरा उनकी पहुँच से बाहर हो रहा था। श्मशान में दाह–संस्कार के समय ही उसे पहचान सकेंगे। कपूर उनके कन्धे से लगा बेतरह हिलता हुआ सुबक रहा है।...

उन्होंने देखा। गौर किया। कपूर के गले में पड़ा मफलर वही नहीं है जो गंगासागर की तीर्थयात्रा से लौटते हुए चटर्जी दी उसके लिए लायी थीं।...

कपूर के हठ के आगे उन्हें झुकना पड़ा। विष्णु और उन्होंने मिलकर उसे बस की सीढ़ियों पर चढ़ाया। ऊपर से खींचने में कुछ अन्य लोगों ने मदद की।

कपूर की बगल में ही बैठे सचदेवा जी। बूढ़ों की बारात थी। बीस मिनट से ऊपर लग गये बैठा–बैठी में। एम्बुलेंस को रोक रखा गया था। बस घुरघुराए तो 'एम्बुलेंस' आगे चले। बस घुरघुरायी। 'एम्बुलेंस' बस के आगे हो ली। कमलेश बहन जी ने उच्चारा– "बोलो राम नाम सत्य है सत्य..."

अवरुद्ध कंठ उसी धुन में राम नाम' उच्चारने लगे। आश्रम के बाहर होते ही बस 'एम्बुलेंस' के पीछे बायीं ओर को मुड़ने लगी कि अचानक सचदेवा जी भड़भड़ाये से अपनी सीट से उठ खड़े हुए। हाथ उठा ड्राइवर को पुकारते हुए कहने लगे–"ड्राइवर साहब, जरा गाड़ी रोकना भैया। रोकना तो..." आगे बैठे लोगों ने उनके स्वर में स्वर मिलाया। उनके सीट से बाहर होते न होते कपूर ने उनका कुर्ता पकड़ लिया।

"आप भाई जी, गाड़ी क्यों रुकवा रहे हैं?"

"उतरना है मुझे।"

"कुछ भूल गये?"

"नहीं, याद आ गया, मुझे तो अट्टा मार्केट जाना है।"

"अ ट् टा SSS किस वास्ते भाई जी?"...

मगर सचदेवा जी उन्हें जवाब देने के लिए रुके नहीं, लपकते हुए रुकी बस के दरवाजे से नीचे उतर गये।

उनके उतरते ही ड्राइवर ने बस बायीं ओर मोड़ दी।

Scanned by CamScanner